Chapter-2

:: अध्याय : दो ::

:: ओशो रजनीश और हिन्दी साहित्य ::

:: अध्याय : दो ::

:: ओशो रजनीश और हिन्दी साहित्य ::

प्रास्ताविक :

ओशो रजनीश ने अपने कर्तृत्व-काल में जीवन और जगत के नाना विषयों से संबद्ध अनेक आयामों पर गद्य-पद्य, गद्यपद्य, पत्र, प्रवचन, गीत, गज़ल, कविता, लघुकथा, दृष्टांत कथा प्रभृति के माध्यम से स्वतंत्र एवं नवीन ढंग से, कहिए आधुनिक ढंग से, चिंतन किया है। और उनका यह चिंतन, मानव-जीवन की एक अमूल्य निधि है, यह सत्य अब शनैः शनैः और भी गहरे अहसास के साथ जगत के लोगों पर उजागर हो रहा है। तब यह सवाल साहित्य के अध्येताओं के समक्ष उपस्थित होता है कि क्या रजनीश-जी के इस साहित्य को हम हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत स्थान दे सकते हैं ? वस्तुतः यह सवाल ही थोड़ा टेढ़ा लग रहा है, क्योंकि यदि किसीने कुछ लिखा है और उसका लिखा यदि मानव-समाज को उत्प्रेरित करता है, तो फिर वह साहित्य की परिधि में

क्यों नहीं आयेगा ? यदि हम अपनी समग्र परंपरा को टटोलें तो ज्ञात होगा कि इस क्षेत्र में तो जीवन के नाना क्षेत्रों से कई प्रकार के लोग आये हैं । वस्तुतः यह सवाल अब इधर इसलिए उठ रहा है कि पिछले कई दशकों से साहित्यिक लेखन समग्र भारतीय परिवेश में एक विशिष्ट वर्ग या समुदाय के अन्तर्वर्तित हो रहा है , अतः अब कोई जुलाहा , कोई जूता-चप्पल सीने वाला चमार , लोगों के बीच धुनी रमाने वाला कोई भगत , अब कवि-साहित्यकार के रूप में स्थापित नहीं हो सकता । जब हम कहते हैं कि स्थापित नहीं हो सकता , तो उसका अभिप्राय वर्तमान या साम्प्रत से है , क्योंकि साहित्य यदि साहित्य है , तो वह कालरूपी वामन की छाती पर पैर रखकर आगे बढ़ेगा ही । हां , वह इस "अहो रूपम् अहो ध्वनि " वाले लोगों या वर्ग-समुदायों में स्थापित नहीं होगा । वस्तुतः साहित्य तो चेतोविस्तार के लिए है , दीवारों को ढहाने के लिए है , दीवारों के निर्माण के लिए नहीं । अतः साहित्य के क्षेत्र में मठाधीश-वृत्ति और खेमापरस्ती को प्रश्रय नहीं मिलना चाहिए ।

वस्तुतः हमारा चिंतन स्पष्ट और साफ होना चाहिए । " इधर से खांडा और इधर से बांडा " वाली मनोवृत्ति धूर्तता और संकीर्णता की पोषक है । अगर हम शबरपा , सहरपा , गोरख , कबीर , सूर , तुलसी , मीरा को हिन्दी साहित्य में परिगणित करते हैं , तो फिर ओशो रजनीशजी को क्यों नहीं ? अतः इस प्रश्न की तह तक जाने के लिए हम साहित्य-विषयक कतिपय विभावनाओं पर विचार-विमर्श करना अत्यावश्यक समझते हैं ।

साहित्य-विषयक अवधारणाएं :

हमारे यहां साहित्य के लिए काव्य और वाङ्मय आदि शब्दों का प्रयोग भी मिलता है । अंग्रेजी में इसे "लिटरेचर " और उर्दू में

"अदब" कहते हैं । "वाड.मय" से तात्पर्य है — जो भी वाणीमय है, वह वाड.मय है । अंग्रेजी के "लिटरेचर" से यह तुलनीय है । "लिटरेचर" से भी वही तात्पर्य है कि जो भी "लेटर" अर्थात् "अक्षर" मय है, वह "लिटरेचर" है ।

यह तो साहित्य की एक व्यापक विभावना है, जिसमें संसार का तमाम लिखित वस्तु साहित्य के अन्तर्गत आ जाता है । कई बार सामान्य व्यवहार में भी लोग इसे प्रयुक्त करते हैं । जैसे कोई मेडिकल रीप्रेजेण्ट-टेटिव कहता है कि यदि आपको रुचि है तो हमारा यह "लिटरे-चर" पढ़ जाइये । इस प्रकार किसी विषय से संबद्ध जानकारी वाले "चोपानियों" या "पैम्फलेटों" को भी लोग साहित्य कहते हैं । परंतु यह तो साहित्य की एक सर्वव्यापक विभावना हुई । वस्तुतः जब हम हिन्दी साहित्य, गुजराती साहित्य, अंग्रेजी साहित्य या रूसी साहित्य की बात करते हैं; तब हमारे सामने साहित्य की एक रूढ़ विभावना होती है । अंग्रेजी के आलोचक डीक्वेन्सी ने इसको विश्लेषित करते हुए दो विभागों में आबंटित किया है — (क) लिटरेचर आफ नोलेज और (ख) लिटरेचर आफ पावर ।

"लिटरेचर आफ नोलेज" में जीवन और जगत के ज्ञान-विषयक तमाम विषय आ जाते हैं, जबकि "लिटरेचर आफ पावर" में वह रूढ़ विभावना वाला साहित्य आता है । हमारे यहां इन्हें क्रमशः शास्त्र और काव्य कहा गया है । प्रथम के अन्तर्गत संसार के तमाम शास्त्र और विषय आ जाते हैं और दूसरे में रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त साहित्य । यहां हम जिस "साहित्य" शब्द की चर्चा करने जा रहे हैं, उसका संबंध इसी दूसरे वर्ग, अर्थात् "लिटरेचर आफ पावर" से है ।[1]

साहित्य का जो व्युत्पत्तिगत अर्थ निकलता है, वह है — "सहितस्य भावः साहित्यम्" । अर्थात् "सहित" होने का भाव साहित्य है ।

इस "सहित" शब्द को भी दो तरह से समझाया गया है — "सहित" अर्थात "साथ होना " । जब हम कहते हैं कि "परिवार-सहित यात्रा पर जाएँगे , तब उसका आशय समूचे परिवार के साथ जाएँगे " यही होता है । तो अब प्रश्न उठता है कि साहित्य में कौन-कौन साथ होते हैं ?

काव्यादर्श में भामह लिखते हैं — " शब्दार्थौसहितौ काव्यम् " । साहित्य में शब्द और अर्थ का साथ होता है । "शब्द" और "अर्थ" की जुगलबंदी ही साहित्य है । यहाँ किसीको प्रश्न हो सकता है कि "शब्द" और "अर्थ" का साथ कहाँ नहीं होता ? ये जितने शास्त्र और विषय बताये गये हैं , सभी में शब्द और अर्थ तो होते ही हैं । शब्द और अर्थ के बिना तो एक वाक्य की रचना भी नहीं हो सकती । परंतु यहाँ पर "शब्द" और "अर्थ" के साथ होने का लाक्षणिक अर्थ ग्रहण करना चाहिए । यहाँ "शब्द" और "अर्थ" के साथ-साथ होने का तात्पर्य यह है कि दोनों को समान महत्व दिया जाता है । साहित्य से इतर विषयों में — शास्त्रों में — केवल "अर्थ" का महत्व होता है , वहाँ "शब्द " गौण हो जाता है । गणित , पदार्थ-विज्ञान , रसायण-विज्ञान आदि में तो कई बार शब्दों के स्थान पर संकेतचिह्नों से भी काम चलाया जाता है ।

जबकि साहित्य तो "शब्द" और "अर्थ" की साधना है । यहाँ तो शब्द को ब्रह्म तक कहा गया है । " नादाधीनं जगत सर्वम् " — नारद भक्ति-सूत्र में कहा गया है ।

कविता में तो शब्दों का यह महत्व और भी बढ़ जाता है । " सेस महेस गनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावै " — रसखान की इस पंक्ति में शेष , शंकर , गणपति , सूर्य , इन्द्र आदि शब्द रखने से अर्थ तो वही रहेगा , परंतु सेस महेस गनेस दिनेस सुरेस आदि शब्दों के

आ जाने से पंक्ति में जिस नाद-सौन्दर्य की सृष्टि हुई है वह दूसरे शब्दों से न हो पाती । [2]

अस्तु , साहित्य में केवल बात का ही नहीं , वरन् बात कैसे , किन शब्दों में कही जाती है , उसका भी महत्व है । बात तो जो " शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे " में है , वही " नीरस तरुरिह विलसति पुरतः " में भी है , परंतु प्रभाव वैसा नहीं है । कदाचित इसीलिए महाकवि कालिदास ने शब्द और अर्थ की वंदना "पार्वतीपरमेश्वरौ " के रूप में की है । गोस्वामी तुलसीदास भी शब्द और अर्थ को पानी और लहर के समान मानते हैं — "गिरा अर्थ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न । " क्या कभी लहर को पानी से अलग किया जा सकता है ? इस प्रकार साहित्य में शब्द और अर्थ के अतिरिक्त भाव और विचार , आदर्श और यथार्थ तथा व्यष्टि और समष्टि आदि कई युग्मों का सुंदर सामंजस्य होता है । [3]

साहित्य में निहित "सहित" का दूसरा अर्थघटन "हितेनसहितम्" के रूप में किया जाता है । साहित्य किसी-न-किसी प्रकार से मानव-जाति का हित संपादित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है । उसमें "शिवम् " अर्थात् कल्याण की भावना अवश्यमेव रहती है । साहित्य में भी सत्य की स्थापना की जाती है , लेकिन उसका सत्य "शिवम्" और "सुंदरम्" से समन्वित होता है । कहा गया है —

" सत्य बात कवि ही कहे क्योंकि हृदय में आग
शिव-सुंदर भी वह कहे क्योंकि हृदय में राग "

यहाँ "कवि" शब्द को उसकी व्यापकता में ग्रहण किया गया है । हमारे यहाँ साहित्यकारमात्र के लिए कवि शब्द प्रयुक्त होता रहा है ।

साहित्य मनुष्य में छिपे हुए "पशु" का नाश कर, उसमें उच्चातिउच्च मानवीय गुणों की स्थापना करता है। साहित्य के पठन-पाठन से मनुष्य का "चेतोविस्तार" होता है, और वह अपने व्यक्तिगत सुख-दुःखों से उठकर सृष्टि के समस्त चराचर प्राणियों के संवेदनों से अपने मन के राग को जोड़ता है। साहित्य और साहित्यकार का प्रयोजन उदात्तता की ओर संक्रमित होना है, जिसे पाश्चात्य विद्वान लोंजाइनस ने भी अपने साहित्यिक सिद्धान्तों में रेखांकित किया है। लोंजाइनस उदात्तता को महान आत्मा की सृष्टि मानता है — "सब्लिमिटी इज़ द ईको आफ ग्रेट साउल"। उदात्तता के स्रोत-स्थानों के संबंध में लोंजाइनस निम्नांकित पांच तत्वों को प्राधान्य देते हैं — 1. महान विचारों के सर्जन की शक्ति — § द पावर आफ फार्मिंग ग्रेट कन्सेप्शंस § ; 2. उत्कट एवं अन्तःस्फुरित भावावेग § वेहेमेण्ट एण्ड इनस्पायर्ड पैशन § ; 3. अलंकारों का उचित निर्माण § ड्यू फोर्मेशन आफ फिगर्स § ; 4. उदात्त काव्यबानी — § नोबल डिक्शन § ; 5. गौरवान्वित एवं असामान्य संयोजन § डिग्नीफाईड एण्ड एलिवेटेड कोम्पोज़िशन § ।

इससे फलित होता है कि साहित्य और साहित्यकार देशकाल की सीमाओं से परे होते हैं। देशकाल की दीवारों को ढहाना ही उनका कार्य है। दीवारों का निर्माण नहीं। अतः साहित्यकार अपने व्यक्तिगत सरोकारों से ऊपर उठकर समष्टिगत कल्याण की ओर स्वयं उन्मुख होकर जगत को भी उन्मुखित करता है।

जैसे यु.एस. फेडरल ब्यूरो आफ इन्वेस्टिगेशन के "क्राईम क्लोक" की निम्नलिखित टिप्पणी पर ओशो की चिन्ता उनकी उक्त लिखित समष्टि-भावना को द्योतित करती है। "क्राईम क्लोक" की टिप्पणी इस प्रकार है —

" अमेरिकन इज मर्डरर एवरी 21 मिनट्स. द ग्रिसली टोटल केम टु 24703 मर्डर्स इन यु.एस.ए. इन 1991. गन्स काज़ 70 % आफ थीज़ वायोलेण्ट डेथ्स, एण्ड थो राईफल्स एण्ड शोटगन्स कम्प्राइज़ टु-थर्ड आफ द 200 मिलियन अमेरिकन आरसेनल, थे एकाउण्ट फार लेस थेन 10 % आफ

होमिसाइड्स , एज इन द वाइल्ड वेस्ट टेलिविज़न लोर , पिस्तोल एण्ड सिक्स शूटर रिवोल्वर रीमेइन द वेपन्स आफ [illegible] चोइस फार द अमेरिकन किलर ; हाफ आफ अमेरिकन होमिसाइड्स आर हेण्डगन वर्क. बट द प्रिमाइस एण्ड नोशन आफ द वाइल्ड वेस्ट फैण्टसी हेव चेइन्ज्ड. आल्थो मोस्ट ओनर्स स्टील क्लेम धेर साइडआर्म्स फोर सेल्फ प्रोटेक्शन, एण्ड ४x४x 2 % आफ हेण्ड-गन किलींग बाय प्राइवेट सिटीजन्स आर ओन एडज्युडिकेशन ," जस्टिफायेबल होमीसाइड " . इन अधर वर्ड्स 98 % आर मर्डर. एण्ड द नोशन धेट ओन्ली द " बेड गाय गेट्स इट " इज़ इक्वली फेल्लेशियस व्हेन वन कंसीडर्स धेट ए थर्ड आफ होमीसाइड्स टेक प्लेस ओन द इम्पल्स आफ एंगर एण्ड धेट 34 % आफ मर्डर विक्टम्स आर एक्वेण्टेनकोन्सक्युअल अनधर 12 % आर फेमिली मेम्बर्स. मोर टीनेजर्स एण्ड यंग एडल्ट्स डाय फ्रोम गन-शोट धेन फ्रोम आल नेचरल काजिज कम्बाइण्ड... धेर आर धोज टु एट्रिब्यूट अस होमीसाइड रेट्स टु " नेशनल कैरेक्टर एण्ड डेमोग्राफी " .[5]

इस पर ओशो रजनीश ने अपने वैज्ञानिक ढंग से चिंतन करते हुए कहा है — " इट इज नोट समथिंग सुपरफिशियल. इफ़ वी वाण्ट टु चेइन्ज द वायोलण्ट-स्ट्रक्चर आफ अमेरिका , धेर आर थ्री थिंग्स टु बी डन. वन, द कन्ट्री शुड बी रुल्ड बाय इट्स नेटिव पिपुल. इट बिलोंग्स टु धेम. एनीबडी हु वाण्ट्स टु रीमेन हीअर शुड रीमेन हीअर , बट ही केन नोट रीमेन हीअर एज रुलर. सेकण्डली, अमेरिका शुड स्टोप बाधरिंग अबाउट अधर कन्ट्रीज़ पुअर पिपुल. इट शुड हेल्प इट्स ओउन पुअर पिपुल. थर्डली , अमेरिका शुड स्टोप पाइलिंग अप न्युक्लीआ वेपन्स. धे आर पेइनलेस , सो कोस्टली, सो मीनिंगलेस. यु आलरेडी हेव इनफ टु डिस्ट्रोय द होल वर्ल्ड , व्होट मोर डु यु वाण्ट ? इफ अमेरिका डु धेट , इट्स पिपल केन बी इम्मेन्सली रीच, हैपी. एण्ड पिपल हु आर हैपी डु नोट डु वायोलेन्स. इट इज आउट आफ मिजरी, सफरिंग , एंगर , धेट वायोलेन्स कम्स. व्हेन यु आर कम्फोर्टेबल , हैपी , एट होम , एण्ड आल धेट यु नीड इज अवेलेबल टु यु , यु केन नोट वाण्ट टु वायोलेण्ट — बिकाज योर बीइंग वायो-

लेण्ट विल डिस्ट्रोय योर कॉजी होम , योर ब्युटीफूल सराउडिंग्स , योर लव-लाईफ , योर चिल्ड्रन , योर वाईफ़ , योर पैरेण्ट्स विल बी लोस्ट. इट इज द पिपल हु हेव नथिंग टु लूज़ बिकम वायोलेण्ट. एण्ड वन कैन नोट से टु थेम , " डोण्ट बी वायोलेण्ट. " " 6

विश्व में जो आणविक युद्ध की विभीषिका भभक सकती है उस पर ओशो ने गंभीर चिंतन किया है । 5 जून 1993 के एक लेख में उन्होंने इस पर प्रकाश डालते हुए कहा है —

" डिड यु स्टोप वरिंग अबाउट न्युक्लीअर आब्लीटरेशन व्हेन द कोल्ड वार इज ऐन्डेड ? स्टार्ट अगेन , टु मेक एन अटोमिक बोम्ब , ए टैरेरिस्ट आर ए वुड बी प्रोलिफरेटर वुड नीड टु गेट होल्ड आफ ओन्ली 5 के.जी. आफ वेपन — ग्रेड प्लोटिनियम आफ 15 के.जी. आफ वेपन ग्रेड ट्रेनियम , लेस थेन यु वुड नीड टु फिल ए फ्रूट-बाउल. एट प्रेजेण्ट द वर्ल्ड प्रोबेबली कन्टेन्स अबाउट 250 टन्स आफ धीस शोर्ट आफ प्लोनियम एण्ड एण्ड 1500 टन्स आफ द ओरेनियम. टु लूज वन बोम्ब्स वर्थ फ्रोम द स्टोक इज द इक्वोवेलेण्ट आफ लूजिंग ए सिंगल वर्ड फ्रोम वन टु थ्री कोपिज़ आफ द इकोनोमिस्ट. बट द लोस वुड बी हार्डर टु डीटेक्ट. द वर्ल्ड स्टोक आफ न्युक्लीअर एक्सप्लोसिव मटीरियल इज़ डिसपर्सड एण्ड होर्डेड. आलमोस्ट नन आफ धीस मटीरियल इज कवर्ड बाय इण्टरनेशनल न्युक्लीअर एकाउटींग रूल्स एण्ड मोर थेन हाफ आफ इट इज इनसाइड द केओटिक रेलिक आफ द फोर्मर सोवियेट युनियन. " 7

इस संदर्भ में ओशो ने समग्र विश्व का ध्यान आकर्षित करते हुए भविष्यत् युद्ध की संभावनाओं पर कहा है —

" द डिस्ट्रक्शन इज नोट कमिंग फ्रोम सम अधर प्लेनेट , वी आर प्रीपेरेरिंग अवर ओउन ग्रेव्ज़ . वी मे बी अवेर , वी मे नोट बी अवेर , वी आर आल ग्रेव ड्रीगर्स वी आर आल डीगिंग अवर ओउन ग्रेव्ज. राईट नाउ

थेर आर ओन्ली फाइव नेशन्स हू आर इन पजेशन आफ न्यूक्लीअर वेपन्स. एण्ड थीज न्यूक्लीअर वेपन्स आर मिलियन्स आफ टाइम्स मोर पावर-फुल धन द सेकण्ड वर्ल्ड-वार एटम-बोम्ब्स. नाउ सायन्टीस्ट से धेट कम्पेर्ड टु मोडर्न न्यूक्लीअर वेपन्स , द सेकण्ड वर्ल्ड-वार एटम-बोम्ब्स सीम टु बी फायर-क्रेकर्स. बाय द इयर्स 2010 , ट्वेन्टी-फाईव अधर नेशन्स वील आल्सो बी न्युक्लीअर पावर. इट इज गोईंग टु बी बीयोण्ड कन्ट्रोल. थर्टी नेशन्स हेविंग सो मच डिस्ट्रक्टीवनेस धेट ए सिंगल नेशन कुड डिस्ट्रोय द अर्थ हौल अर्थ. ए सिंगल क्रेजी मेन , ए सिंगल पोलिटिशियन, टु शो हीज पावर केन डिस्ट्रोय द होल आफ सिविलाईजेशन एण्ड यु हेव टु बीगीन फ्रोम ए.बी.सी. .... इन द हेण्ड्स आफ गौतम बुद्ध न्यु-क्लीअर वेपन्स आर नो लोंगर डेंजरस. इन द हेण्ड्स आफ गौतम बुद्ध न्युक्लीअर वेपन्स वील बी टर्न्ड इण्टु सम क्रीएटिव फोर्स, बीकाज फोर्स इज आलवेज न्यूट्रल ; आइधर यु केन डिस्ट्रोय वीथ इट आर यु केन फाइण्ड वेइज टु क्रीएट समथिंग. .... बट राइट नाउ अवर पावर्स आर ग्रेट , एण्ड अवर ह्युमेनीटी इज वेरी स्माल. इट इज एज इफ वी हेव गीवन बोम्ब्स इण्टु द हेण्ड्स आफ चिल्ड्रन टु प्ले वीथ. द ओन्ली पोसीबल वे टु अवोइड इट इज टु क्रीएट मोर मेडिटेटिवनेस इन द वर्ल्ड ." 8

इसलिए आइनस्टाइन ने कभी एक प्रश्न के उत्तर में कहा था कि तीसरे विश्वयुद्ध के विषय में तो मैं कुछ न कहूंगा , पर चौथा विश्व-युद्ध यदि हुआ तो वह धनुष-बाणों से होगा । अभिप्राय यह कि ओशो ने यह सब जो कहा है , उसके पीछे विश्व-कल्याण की भावना निहित है । ओशो जो लगातार घृणा के खिलाफ़ , हिंसा के खिलाफ़ , प्रेम के पक्ष में बोल रहे हैं , कह रहे हैं , उसके मूल में उनका विश्व-प्रेम है , मानवता की भावना है , जो साहित्य मात्र के लिए काम्य है ।

अभिप्राय यह कि साहित्य में समग्र सृष्टि के शिवत्व की कामना निहित होती है । कविवर रामधारीसिंह दिनकर के अनुसार साहित्य

की रचना मनुष्य की अनुभूति और ज्ञान के आधार पर होती है । इसलिए साहित्य के बारे में व्यक्तिवादी और सामाजिक दृष्टिकोण को उठाना व्यर्थ है । इसी प्रकार व्यष्टि और समष्टि का विवाद भी व्यर्थ है , क्योंकि साहित्य बराबर उसी ज्ञान और अनुभूति के आधार पर लिखा जाता है , जिसका प्रचलन समस्त समाज में हो चुका है । [9]

इसके विपरीत उन्नीसवीं शताब्दी में योरोप में यह मान्यता बलवती होती गई कि साहित्य प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप से किसी प्रकार ज्ञान-दान न करें । विषय उसके लिए कच्चा माल है , जिसके आधार पर कला का सर्जन होता है । इसी सिलसिले में अंग्रेजी कवि राजेल्टि ने जनमत के दबाव को अस्वीकार कर दिया । उसका कहना था कि जनमत के आग्रह को साहित्य जिस मात्रा में स्वीकार करेगा , उसी अनुपात में उसकी सौन्दर्य-भावना कमजोर पड़ती जायेगी । उसी संदर्भ में ओस्कार वाइल्ड ने कहा कि सौन्दर्य-भावना में ऊंची नैतिकता का निवास होता है । कला और सौन्दर्य के नाम पर जो कुछ भी घटित होता है , वह सब नैतिक है । कुछ अन्य प्रकार के साहित्यकार भी हैं जो साहित्यकार का समाज के प्रति नैतिक दायित्व नहीं स्वीकार करते । हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार निर्मल वर्मा इसी विचारधारा के माननेवाले हैं । [10]

पाश्चात्य कलावादी क्रोचे अभिव्यंजना को ही कला मानता है और उसे उसकी समग्रता में देखता है । " अभिव्यंजना क्रोचे के अनुसार एक अखंड इकाई है । उसका विश्लेषण उसके सौन्दर्य को नष्ट कर देगा । किसी चित्र में रंग, रेखाओं, आकृतियों, पृष्ठभूमि आदि को अलग-अलग करके देखना उस चित्र के समग्र प्रभाव को खंडित कर देता है । चित्र का सौन्दर्य सभी तत्वों के सम्मिलित , समंजस , समग्र प्रभाव में निहित होता है । कलाकार के मानस में भी प्रभाव बिंब विखंडित रूप में नहीं उभरते , इसलिए कल्पना उस प्रभाव को जो रूपाकार देती है उसमें भी बिम्ब संश्लिष्ट होते हैं और प्रभाव समग्र तथा एकीकृत होता है । " [11]

कुछ आलोचकों का विचार है कि साहित्यकार को सक्रिय राजनीति में भी जाना चाहिए । आरवेल के अनुसार आजकल के जीवन पर राजनीति इस कदर हावी हो गई है कि राजनीति का त्याग जीवन का त्याग हो जाता है । इसलिए साहित्यकार राजनीति का त्याग नहीं कर सकता, परंतु राजनीति में जाकर साहित्यकार को साहित्यिक ही होना चाहिए । परंतु शास्त्र कहता है कि ऐसी दशा में कला प्रचार का हथकंडा बन जाती है, और यदि प्रचार ही उद्देश्य हो गया तो कला कला भी नहीं रहेगी । इन दृष्टिकोणों का सूक्ष्म अध्ययन करने के उपरांत दिनकरजी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रत्येक साहित्यकार यह जानता है कि उसका समाज के प्रति किस सीमा तक दायित्व है । साहित्यकार के सामाजिक दायित्व पर लम्बी चर्चा करना ही निरर्थक है, क्योंकि प्रत्येक साहित्यकार जानता है कि उसके साहित्य का समाज के साथ कहीं-न-कहीं कोई अटूट संबंध है और जिस मात्रा में इस संबंध के निभाने की सही कला उसे मालूम है, उसी मात्रा में वह अच्छा साहित्यकार है । [12]

जो बात साहित्य पर लागू होती है, उसे कविता के संदर्भ में कहते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है — " कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भावभूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है । " [13]

बाबू गुलाबराय ने साहित्य को भावप्रधान ऐसी शाब्दिक रचना कहा है जिसमें कुछ हित का प्रयोजन हो । परंतु उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द ने शाब्दिक रचना मात्र को साहित्य मानने से इन्कार कर दिया । उनके अनुसार भावनाओं को प्रभावित करने वाली वह रचना ही साहित्य कहलाने की अधिकारी है जिसमें जीवन का वास्तविक स्वरूप झलमला रहा हो । साहित्य की इस प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए गंगासहाय पांडेय ने साहित्य विषयक अपनी परिभाषा में कहा — " साहित्य विचारशील आत्माओं की अमर अभिव्यक्ति है । उसमें जीवन-संबंधी

उन विचारों का संकलन होता है जो हमारे जीवन को प्रगति देते हैं । [14]

डा. रामरतन भटनागर ने हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 में साहित्य विषयक चर्चा करते हुए लिखा है — " समाज की स्वस्थ और ह्रासमूलक स्थिति का प्रभाव साहित्य पर पड़ता है । परंतु इसी एक आधार पर साहित्यिक कृति की कला-समीक्षा असंभव है , क्योंकि ह्रासोन्मुख फ्रान्सीसी समाज ने प्रूस्त की जिस महान रचना को जन्म दिया वह कला-संकेतों एवं अभिव्यंजना में सब प्रकार से पुष्ट एवं उत्कृष्ट है । वास्तव में साहित्य और समाज के सूक्ष्म सूत्रों की अन्तःप्रक्रिया को सम्यक् रूप से उपस्थित करना कठिन है और किन्हीं निर्भ्रान्त मूल्यों की स्थापना अभी तक नहीं हो सकी है , फिर भी कृति की कुछ त्रुटियों , अतिवादों , विकृतियों को समाज के संदर्भ में समझा जा सकता है । .... तुलसी , सूर और केशव एक ही युगधर्म की उपज होते हुए भी क्यों भिन्न हैं , यह उसी समय बतलाया जा सकता है जब हम कुछ वर्गीय दृष्टिकोणों के तारतम्य की परख करें तथा तत्कालीन युगधर्म {भक्ति} के भीतर चलती हुई अन्य गौण प्रवृत्तियों के संधान की ओर ध्यान दें । किसी विशेष युग के समाज या साहित्य की अन्तर्वर्तिनी धाराओं और अभिव्यंजनाशैलियों को अलग-अलग लेकर चलना आवश्यक हो जाता है । साहित्य-कृति गद्य है या पद्य , महाकाव्य है , गीति है या नाटक , उसका शिल्प सरल है या सामासिक , इन श्रेणियों के विभिन्न भेदाभेद संभव है । फिर रचना आत्मपरक भी हो सकती है और व्यंजक भी । लेखक जीवन के प्रति पलायनशील है अथवा जीवन की विभीषिकाओं से चुनौती लेता है । चरित्र वर्गीय है या व्यक्तिनिष्ठ ; जिस समाज या वर्ग का कृति में अंकन है , उसके प्रति उसकी निष्ठा किस प्रकार की है , उसके मूल में स्वीकृति है या विरोध आदि अनेक प्रश्नों पर विचार किया जाता है । " [15]

इस प्रकार डा. भटनागर साहित्य और समाज के अन्तर्वर्तिनी संबंधों को

रेखांकित करते हुए साहित्य और समाज के स्वास्थ्य की चर्चा की है । उनके प्रतिपाद्य से इतना तो असंदिग्ध रूप से सिद्ध होता है कि वे समाज तथा साहित्य उभय को परस्परावलंबित मानते हैं ।

साहित्य विषयक गंभीर चर्चा करते हुए हिन्दी के मनीषी चिंतक लेखक जैनेन्द्रकुमारजी ने अपने विचार निम्नलिखित रूप में व्यक्त किये हैं — "साहित्य क्या है ? यह प्रश्न उठाकर हम आशा न करें कि उत्तर में हमें वह परिभाषा या संकेत मिलें जो प्रश्न के चारों खूंट घेर लें । परिभाषा का यह काम नहीं है । परिभाषा सहायक होती है । वह प्रश्नवाचक चिह्नों को सर्वथा मिटा नहीं देती । xxxxxxx परिभाषा द्वारा प्रश्नवाचक चिह्न को मिटा देने का यत्न हमें नहीं करना चाहिए । यह समझ लेना चाहिए कि हमारे सब प्रकार के ज्ञान के आगे , और साथ , सदा प्रश्नवाचक चिह्न चलता है । हमारा कर्तव्य है कि हम प्रश्नवाचक चिह्न को ठेलकर उसे आगे से आगे बढ़ाते रहें । पर यह भी हम करें कि उसे अपनी आँखों की ओट कभी न होने दें । जब ऐसा होता है तभी आदमी में कट्टर आग्रह और हठधर्मिता आते हैं और उसका विकास रुक जाता है । .... (संक्षेप में) मानव-जाति की इस अनंत निधि में जितना कुछ अनुभूति-भांडार लिपिबद्ध है , वही साहित्य है । और भी अक्षरांकित रूप में जो अनुभूति-संचय विश्व का होता रहेगा , वह होगा साहित्य ।" [16]

साहित्य विषयक उक्त अवधारणाओं की चर्चा प्रस्तुत प्रबंध में प्रासंगिक इन अर्थों में हैं कि यहां ओशो-रजनीश के कृतित्व की चर्चा हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में हो रही है । उन पर काफी लिखा गया है , काफी लिखा जा रहा है , काफी लिखा जायेगा ; परंतु प्रायः उनके कृतित्व की चर्चा एक दार्शनिक व्यक्ति के कृतित्व की हैसियत से होती रही है और उनकी साहित्यिक रचनात्मक ऊर्जा को प्रायः अनदेखा किया गया है । हिन्दी साहित्य के विद्वानों तथा xxxxxx

इतिहासकारों ने उनके कतृत्व को लेकर गंभीर चर्चा नहीं की है । वे उनके कतृत्व को साहित्येतर क्षेत्र का विषय मानते हैं ।

मध्यकालीन संत परंपरा से किसी एक संत को लेकर उसकी समीक्षा और विवेचना करने वाले विद्वानों की परिगणना हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत होती रही है , और उनके हिन्दी साहित्य में के योगदान को भी अंगीकृत किया गया है , तो ओशो-रजनीश तो कबीर , मीरा , नानक, फरीद , रैदास , सहजो , दयाबाई , सुंदरदास प्रभृति कई मध्यकालीन संत कवियों पर वैज्ञानिक ढंग से , विश्लेषण संश्लेषण और समन्वय किया है । यह तो उनका एक ही पहलू है , जिसमें हमें उनके भीतर के समालोचक के दर्शन होते हैं । साथ ही साथ साहित्य के अन्य रूपों में भी — गीत , कविता , गज़ल , लेख , गद्यकाव्य , लघुकथा जैसे रूपों में भी उनका कृतित्व प्राप्त होता है । अतः एक क्रांतद्रष्टा हिन्दी रचनाकार — चिंतक — की दृष्टि से भी उनके कृतित्व का मूल्यांकन अपेक्षित है । वस्तुतः ओशो-रजनीश के साहित्यिक मूल्यांकन में जो बाधा या कठिनाई है , वह यह है कि उनका उक्त सभी रूपों में पाये जानेवाला साहित्य विभिन्न साहित्यिक विधाओं में वर्गीकृत रूप में मिलता नहीं है । उनका यह समग्र साहित्य उनके विभिन्न प्रवचनों — ग्रंथों में विशृंखलित रूप में पाया जाता है । परंतु उससे उस साहित्य की साहित्यिक इयत्ता और गरिमा में कहीं कोई कमीबेशी नहीं पाई जाती । वैसे तो कबीर ने भी अपने पद , साखी या रमैनी की रचना कोई साहित्यिक मानदंडों को सामने रखकर नहीं की थीं ; यह अलग बात है वे जो कहते गये साहित्य का शाश्वत अंग बनता गया । ठीक उसी प्रकार ओशो रजनीश ने भी जो भावाभिव्यक्ति की वह भविष्यत् साहित्य-भावकों के लिए किसी महती ऋचा से कम नहीं होगी । वस्तुतः साहित्य में नवीनता का आविर्भाव ही तब होगा जब उसमें परंपरागत या रूढ़िगत साहित्य से इतर के व्यक्तियों का प्रवेश होगा और अतएव ऐसे प्रवेश का हमेशा स्वागत होना चाहिए । साहित्य को उसकी

परंपरागत ज़मीन से उठाकर चिंतन-मनन के नये क्षितिजों को टोहने के लिए यह आवश्यक हो जाता है ।

इस संदर्भ में सूर्यकान्त बाली के निम्नलिखित विचार भी चिंतनीय है — " ऋग्वेद में जब कवि ने विचार करना शुरू किया कि यह संसार जिसमें हम रह रहे हैं कैसे बना तो जानते हैं उसने क्या निष्कर्ष निकाला ? उसने कहा कि पता नहीं पहले सत् था कि असत् था , पता नहीं सबसे पहले आकाश था या जल था या काम था । इस ब्रह्मांड के रचयिता को ही पता रहा होगा कि पहले क्या था जहां से संसार बना या शायद उस रचयिता को भी पूरी तरह से पता नहीं रहा होगा । यह महज़ एक दृष्टांत है कि कैसे इस देश के ज़हन में यह बात रची-पची है कि परम सत्य संबंधी प्रश्नों का कोई एक उत्तर नहीं होता और हरएक को अपने हिसाब से उत्तर खोजना पड़ता है ।" [17]

इससे यह निष्पादित होता है कि सत्य , सौन्दर्य , प्रेम , मनुष्य , धर्म , ईश्वर , काव्य आदि ऐसे विषय हैं कि जिनके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहना संभव नहीं है , क्योंकि ये विषय प्रश्नों के समाधानकर्ता नहीं , अपितु प्रश्नों के उद्गाता रहे हैं ।

इस संदर्भ में मेरे निर्देशक प्रोफेसर डा. पारुकांत देसाई का निम्नलिखित मंतव्य भी विचारणीय रहेगा — " काव्य की अपूर्ण पवित्रता अनंत संभावनाओं का केन्द्र है । पूर्णता सीमित होती है , अपूर्णता असीम । अतः शास्त्र ससीम होता है , काव्य असीम और इस असीम की आराधना में ही कवि-कर्म की सार्थकता निहित है । हद से अनहद की तरफ जाना ही काव्याभिमुख होना है । " हदें न भायीं मुझे दुनियादारी की यहां / मैं चाहता रंगे बहार , चाहता गमे-बहार । " कवि प्रेमी होता है , भक्त होता है , ऋषि-मनीषी और चिंतक होता है , और इन सबके लिए सच्चा होना बहुत

जरूरी है । सत्य की आराधना ही उसका काम्य है , परन्तु वह श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व के साथ ग्रहण करता है । " [18]

साहित्य विषयक उक्त अवधारणाओं के प्रकाश में हम निम्नलिखित कतिपय तथ्यों को रेखांकित कर सकते हैं —

1. साहित्य मनुष्य और समाज की एक अमूल्य निधि है । यही वह विभाजक रेखा हैजहां मनुष्य मनुष्येतर प्राणी जगत से अलग पड़ता है । आहार , निद्रा , भय और मैथुन ये चार मूलभूत प्रवृत्तियां (बेसिक इनस्टिंक्ट्स) मनुष्य सहित सभी प्राणियों में विद्यमान होती हैं , परन्तु मनुष्य के पास अन्य चार बहुमूल्य तत्व हैं — भाषा , साहित्य, कला और धर्म । इनके द्वारा वह संस्कारित एवं अनुशासित होकर विवेकसंपन्न होता है । अतः कहा जा सकता है कि आदमी साहित्य के द्वारा सही इन्सान की पहचान बनता है ।

2. साहित्य का आदर्श "सत्यम् , शिवम् , सुंदरम् " का होता है । साहित्य भी सत्यान्वेषण करता है , परंतु उसकी विधि शास्त्र से थोड़ी ~~भिन्न है~~ भिन्न है । उसका सत्य खालीस सत्य न होकर "शिवम्" और "सुंदरम्" से समन्वित होता है ।

3. धर्म की भांति साहित्य भी भेद से अभेद की तरफ ले जाकर उसे उर्ध्वगामी बनाता है ।

4. शास्त्रयुक्त ज्ञान मनुष्य को भिन्न-भिन्न विषयों की जानकारी देता है , जबकि साहित्य मनुष्य की अनुभूति को परिचालित करता है । अतः साहित्य द्वारा सर्जित ज्ञान अधिक स्थायीत्व को प्राप्त होता है । यद्यपि यह तथ्य किसी शास्त्र ~~विशेष~~ विशेष के तज्ञ के संदर्भ में लागू नहीं होगा क्योंकि उसके लिए वह एक सर्जनात्मक अनुभूति हो सकती है ।

5. साहित्य की संभावनाएं अनंत हैं , क्योंकि उसका संबंध पल-पल ~~प~~ परिवर्तित सौन्दर्य-राशि से है । अतः उसे नियमों के चौकठे में जड़ा नहीं जा सकता । यहां एक और एक मिलकर सदैव दो नहीं होते । दो से अधिक , कम , शून्य कुछ भी हो सकते हैं । कहा भी गया

है — " एक मिले जब एक से कबिरा एकै होय " या " एक मिले जब एक से कबिरा ग्यारा होय । " [19]

6. शास्त्र वर्ग या कोटि निर्धारण में विश्वास रखकर चलता है । उसके लिए एक वर्ग की सभी इकाइयाँ बराबर-बराबर होती हैं , जबकि साहित्य में सबके प्रति अभेदत्व होते हुए भी वह वैयक्तिक इकाइयों को महत्त्व देता है । पार्वती कहती है — "बरहौं तो शंभू , नतौ रहौं कुंवारी । " [20]

7. साहित्य शास्त्र से पूर्व भी हो सकता है , पर शास्त्र साहित्य के पूर्व यदि रहेगा तो वह अपना कुमारिल-सौन्दर्य खो बैठेगा । वस्तुतः साहित्य जब जड़ता ग्रहण करता है , तब वह शास्त्र की ओर उन्मुख होता है ।

8. साहित्य और समाज परस्परावलंबित है । साहित्य समाज का मुख भी है और दर्शन भी । साहित्य वह हृदय है जहाँ समाज का रक्त शुद्ध होता है और वह नया प्राणतत्त्व प्राप्त करता है ।[21] साहित्य नियमों और वादों से ऊपर होता है , परंतु उसका अर्थ यह नहीं कि उसमें कोई विचारधारा नहीं होती । वस्तुतः विचार-धारा से संबद्ध हठधर्मिता ही साहित्यिक वातायन को कलुषित करती है । साहित्य के किसी उत्तम अंश के लिए " यह साहित्य है " ऐसा तो कहा जा सकता है , परंतु " यही साहित्य है " ऐसा कहना साहित्य की गरिमा और उसकी असीम संभावनाओं के आकाश को खंडित करना होगा । जैसे कोई नेता या महानायक कितना भी बड़ा क्यों न हो , वह राष्ट्र की बराबरी नहीं कर सकता , ठीक उसी प्रकार साहित्यकार कितना भी बड़ा क्यों न हो , साहित्य से ऊपर नहीं हो सकता ।

9. साहित्य या काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है । वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है , जिसका संबंध विज्ञान, विश्लेषण या वितर्क से नहीं है । [22] शास्त्र अपनी निश्चित अव-धारणाओं के तहत चल सकता है । पर चलने और बहने में अंतर

होता है । यहां कोई निश्चित अवधारणा या परिमाण नहीं होता । सम्पूर्णता का यहां छेद उड़ाना होता है । अपूर्णता ही यहां काम्य है । क्योंकि सम्पूर्णता सीमा से आबद्ध है, जबकि अपूर्णता सीमातीत सम्भावनाओं को लिए हुए है । 1+1=2 कह देने पर बात समाप्त हो जाती है, किन्तु 1 + 1 = 9 रखने से बात की संभावनाएं बढ़ जाती हैं । और साहित्य का संबंध इन संभावनाओं के विस्तार से है । शास्त्र अपनी निर्मिति के बाद मृत हो जाता है, परंतु काव्य निर्मिति के पश्चात् संभावनाओं के आकाश में अनंत समय तक झिल-मिलाता रह सकता है ।

अब उक्त अवधारणाओं के निकष पर ओशो रजनीश की अभिव्यक्ति को साहित्यिक अभिव्यक्ति कहा जाना चाहिए । जिस प्रकार कबीर, नानक, फरीद, दादू, मीरा, रैदास, सहजो, दया आदि की सहजिक अभिव्यक्तियां अब साहित्य में अन्तर्निहित हो गई हैं, ठीक उसी प्रकार रजनीश की सहजिक अभिव्यक्तियां भी साहित्य के भंडार में श्रीवृद्धि करेंगी यह भविष्यत् समय बतायेगा ।

जहां तक ओशो-रजनीश के साहित्यिक योगदान का प्रश्न है, उन्होंने निबंध, लघुकथा, दृष्टांतकथा, लेख, प्रवचन, संस्मरण, गीत, गज़ल, कविता, गद्यकाव्य, पत्र आदि अनेकानेक विधाओं में अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के ज़रिये हिन्दी साहित्य के भंडार को अपनी रत्नकणिकाओं से आपूर्त किया है । उक्त विधाओं के उनके साहित्यिक अवदान की चर्चा अपेक्षाकृत विस्तार के साथ आगामी अध्यायों में होगी, यहां तो उनमें से कुछ को केवल बानगी के तौर पर प्रस्तुत करने का उपक्रम रहेगा, ताकि हिन्दी के विद्वानों एवं अनुसंधित्सुओं को एक नवीन दिशा की ओर उन्मुख किया जा सके । उन्हें ओशो-रजनीश के हिन्दी साहित्य से अवगत कराकर उनके साहित्यिक योगदान को रेखांकित करने का भी यहां एक

उपक्रम है ।

ओशो-रजनीश ने न केवल उक्त निर्दिष्ट सर्जनात्मक साहित्य दिया है, अपितु कबीर, मीरा, फरीद, नानक, सहजो, दादू, दुलाल प्रभृति हिन्दी के प्रतिष्ठित संत कवियों पर आलोचनात्मक ढंग से नवीन दृष्टिपात किया है और यह आलोचना हिन्दी के विद्वानों के लिए मूल्यवान एवं अर्थगर्भ इसलिए भी है उसमें उनके बहुश्रुत पठन-पाठन एवं ज्ञान तथा अनुभव का निमज्जन हमें उपलब्ध होता है । हिन्दी के परंपरागत विद्वानों से अलग हटकर एक नयी-निमज्जित दृष्टि हमें प्राप्त होती है । यह एक स्वानुभूत सत्य है कि साहित्य में जब विभिन्न आयामों से जुड़े व्यक्तियों का आविर्भाव होता है, तो निश्चित रूप से वे एक नवीन दृष्टि अलौकोन्मुखी साहित्य देते हैं । ऐसे साहित्यकारों का चिंतन-व्याप अधिक विस्तृत एवं अनेकआयामी होने के कारण वे साहित्य के बने-बनाये बंदियार दायरों को अतिक्रमित करके साहित्य को उसकी मूल प्रवृत्ति से जोड़ते हैं । साहित्य को एक नयी ऊर्जा प्राप्त होती है । यदि ऐसा न होता तो साहित्य चर्वणा और पुनर्चर्वणा का एक सीमित कक्ष बनकर रह जाता । विश्व-साहित्य पर दृष्टिपात करने से यही प्रतिफलित हुआ है कि जब-जब इसमें अन्य क्षेत्र के लोग आये हैं, उन्होंने साहित्य को एक नवीन दृष्टि और ऊर्जा दी है ।

"ओशो के आगमन से एक नये युग का सूत्रपात हुआ है जिसकी [redacted] आधारशीला अतीत के किसी धर्म में नहीं है, किसी दार्शनिक विचार-पद्धति में नहीं है, ओशो -रजनीश सद्यःस्नात धार्मिकता के प्रथम पुरुष है, सर्वथा अनूठे संबुद्ध रहस्यदर्शी । अपनी अलौकिक बुद्धि तथा दृढ़ता से ओशो ने पंडित-पुरोहितों, मुल्ला-पादरियों, संत-महात्माओं (तथाकथित) जो स्वानुभव के बिना ही भीड़ के अगुवा बने बैठे थे, उनकी मूढ़ताओं और पाखंडों का पर्दाफाश किया है । "[23]

इस संदर्भ में "ओशो टाइम्स" के संपादक स्वामी चैतन्य कीर्ति के

एतद्विषयक विचार ध्यातव्य रहेंगे — " गत चालीस वर्ष से विश्व भर में लाखों -करोड़ों लोगों ने ओशो-साहित्य को पढ़ा है , टेप-प्रवचन सुने हैं और हजारों सौभाग्यशालियों ने उन्हें उनके समक्ष बैठकर सुना है । उन सबका किसी न किसी तल पर जीवन रूपांतरित हुआ है , उन्हें दृष्टि मिली है । उस दृष्टि पर आधारित कहानीकारों ने कहानियाँ लिखी हैं , कवियों ने कविताएं , निबंधकारों ने निबंध और कुछ लोगों ने फिल्मी डायलॉग तक लिखे हैं , तो कुछ लोगों ने दार्शनिक पुस्तकें तक लिख डाली हैं । ओशो ने आज के सृजनशील जगत के चिंतन को , उसकी भाषा को , शब्दावली को बदल दिया है । और आने वाले युगों तक लोग ओशो की सद्यः स्नात भाषा बोलते रहेंगे । " [24] अतः एक युग-चिंतक के रूप में ओशो का जो योगदान है , वह भी कम नहीं है । ओशो का साहित्य तो हमें विपुल परिमाण में उपलब्ध होता है , पर यदि न होता तो भी उनका योगदान इस रूप में रहता ।

गुजराती के लब्धप्रतिष्ठ कवि-आलोचक सुरेश दलाल ने ओशो पर एक पुस्तिका लिखी है जिसमें उन्होंने ओशो को अपने युग का मसीहा , शब्दों का सौदागर , बातों का बनजारा , जीवन-धर्म के पुरस्कर्ता आदि के रूप में चित्रित किया है । [25]यहाँ ओशो-विषयक सुरेश दलाल का एक कथन उद्धृत करने का मोह संवरण नहीं हो रहा है — "प्रेम-विषयक रजनीशजी की समझ कबीर के संदर्भ में इस रूप में प्रकट हो रही है : जिसने मृत्यु को नहीं जाना , वह प्रेम को नहीं जान सकता । जिन्होंने प्रेम को जाना है , उनके लिए मृत्यु है ही नहीं । प्रेम गहनतम मृत्यु ही है, आप निःशेष नहीं हो जाते , तब तक प्रेम अंकुरित नहीं होता । अहंकार प्रेम में बाधारूप है । अहंकार को छोड़ना यह गहन मृत्यु है । प्रेम महामृत्यु है । प्रेम परमात्मा का महाद्वार है । प्रेम में सबका समावेश हो जाता है । प्रेम साधना का सारतत्व है । प्रेम

[illegible] ही एक ऐसा अनुभव है जो आपसे अलग नहीं हो सकता । वह आपको "आप" बनाता है । " [26]

अतः जब ऐसा एक विद्रोही एवं विवादास्पद व्यक्तित्व साहित्याकाश में उदित होगा तो भ्रम के अंधकार को विदीर्ण होना ही होगा । अब यहां हम ओशो की कतिपय सृजनात्मक रचनाओं को प्रस्तुत करने का उपक्रम करेंगे ।

ओशो-साहित्य की कुछ बानगियां :

यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि ओशो-साहित्य के नाना आयामों पर आगामी अध्यायों में विस्तृत चर्चा होगी , अतः इस अध्याय में केवल कुछेक उदाहरणों को प्रस्तुत किया जायेगा , जिसके आधार पर यह प्रमाणित कर सकें कि ओशो का कहा हुआ या लिखा हुआ भी साहित्य की परिधि में आ सकता है ।

यहां उनकी पुस्तक "क्रांतिबीज" से एक छोटा-सा गद्यांश लिया जा रहा है , जिसे चाहे तो कोई गद्यकाव्य की संज्ञा भी दे सकता है ।
" नयी सुबह । नया सूरज । नयी धूप । नए फूल । सोकर उठा हूं । सब नया-नया है । जगत में कुछ भी पुराना नहीं है । कई सौ वर्ष पहले यूनान में हेराक्लतू ने कहा था , " एक ही नदी में दो बार उतरना असंभव है । " सब नया है , पर मनुष्य पुराना पड़ जाता है । मनुष्य नए में जीता ही नहीं , इसलिए पुराना पड़ जाता है । मनुष्य जीता है , स्मृति में , अतीत में , मृत में । यह जीना ही है , जीवन नहीं है । यह अर्ध-मृत्यु को ही हम जीवन मानकर समाप्त हो जाते हैं । जीवन न अतीत में है , न भविष्य में है । जीवन तो नित्य वर्तमान में है । .... वह जीवन योग से मिलता है , क्योंकि योग चीर-नवीन में जगा देता है । योग चीर-वर्तमान में जगा देता है । उसमें जागना है — " जो है " । "जो था " , वह भी नहीं है । " जो होगा " , वह भी नहीं है ।

और " जो है " , वह प्रकट तब होता है , जब मानव-चित्त स्मृति और कल्पना के भार से मुक्त होता है । स्मृति मृत का संकलन है , उससे जीवन को नहीं पाया जा सकता है । और कल्पना भी स्मृति की ही पुत्री है । वह उसकी ही प्रतिध्वनि और प्रक्षेप है । वह सब ज्ञात में भटकना है । उससे जो अज्ञात है , उसके द्वार नहीं खुलते हैं । ज्ञात को जाने दो । ताकि अज्ञात प्रकट हो सके । मृत को जाने दो , ताकि जीवन प्रकट हो सके । योग का सार-सूत्र यही है ।" [27]

उल्लिखित गद्य-खण्ड वस्तु , शिल्प , भाव , विचार , ताजगी , भाषा हर लिहाज से एक साहित्यिक रचना है । उसी प्रकार ~~अअअ~~ उनका यह गद्य-खण्ड देखिए —

"मैं तो जीवन को प्रेम करता हूं । मेरे लिए तो जीवन परमात्मा का ही दूसरा नाम है — जीवन , उसके सारे रंगरूपों में । मैं पलायन-वादी नहीं हूं । मैं सारे पलायनवादियों का विरोधी हूं । और इसलिए तो पुरानी धर्म की जो जड़ आधारशीलाएं हैं , उनको उखाड़ने में लगा हूं । क्योंकि उन सबमें पलायन छिपा हुआ है — भागो , छोड़ो । मैं कहता हूं : जीओ , जागो । भागो मत , छोड़ो मत । जो मिला है अवसर , उसका उपयोग करो । ध्यान सेजीवन गहराया जा सकता है , विज्ञान से स्वस्थ बनाया जा सकता है । विज्ञान के बिना जीवन स्वस्थ नहीं होगा और ध्यान के बिना जीवन गहराई को नहीं पाएगा । विज्ञान बाहर से सहारा दे और ध्यान भीतर से , तो आदमी के जीवन में बड़ी क्रांति घट सकती है । एक-एक मुहूर्त एक-एक शाश्वतता बन सकता है ।" [28]

कई लोग ओशो को बिना पढ़े , बिना समझे-बूझे ही उन्हें सेक्स का गुरु कहते हैं । परंतु ओशो के समग्र साहित्य में , उनके सभी

प्रवचनों में केवल दो प्रतिशत चर्चा सेक्स पर होगी, वह भी स्वस्थ एवं वैज्ञानिक। वस्तुतः वे उससे ऊपर उठने की बात करते हैं। वे सेक्स को भी उदात्त भूमि पर स्थापित करना चाहते हैं। उनकी पुस्तक "संभोग से समाधि तक" में उन्होंने सेक्स को उदात्तता की कोटि तक ले जाने की बात कही है।[29] इस संदर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य रहेगा — "संभोग के क्षण की जो प्रतीति है, वह प्रतीति दो बातों की है — टाइमलेसनेस और इगोलेसनेस की। समय शून्य हो जाता है और अहंकार विलीन हो जाता है। समय शून्य होने से और अहंकार विलीन होने से, हमें उसकी एक झलक मिलती है, जो हमारा वास्तविक जीवन है। लेकिन क्षण-भर की झलक और हम वापस अपनी जगह खड़े हो जाते हैं। और एक बड़ी ऊर्जा, एक बड़ी वैद्युतिक शक्ति का प्रवाह इसमें हम खो देते हैं। फिर उस झलक की याद, स्मृति, मन को पीड़ा देती रहती है।"[30]

यहाँ पर सेक्स से भागने की बात नहीं है, काम से भागने की बात नहीं है, पर उन क्षणों को भी उत्सव बना देने की बात है। उसको समाधि तक ले जाने की बात है। संयम के द्वारा नहीं, भोग के द्वारा उससे ऊपर उठने की बात है। काम को जानकर, उसकी ऊर्जा को ध्यान में संलग्नित करने की बात है। इसी प्रकार "शिष्यत्व" के संदर्भ में सूफी फकीर हसन की दृष्टांत कथा उन्होंने दी है। मृत्यु के समय हसन को किसीने पूछा कि हसन तुम्हारा गुरु कौन था? तो हसन ने उत्तर में कहा कि मेरे तो हजारों गुरु थे, नाम गिनाने बैठूं तो बरसों लग जाये और उतना समय मेरे पास नहीं है, पर हाँ, अपने तीन गुरुओं के बारे में मैं तुम्हें बता सकता हूँ। वे तीन गुरु थे — एक चोर, एक कुत्ता और एक बालक। उस चोर के यहाँ हसन एक महीने तक रहे थे। जब भी चोर चोरी करने जाता, हसनxहूx वापस लौटने पर हसन पूछते — "कुछ मिला तुम्हें?" उसके उत्तर में वह कहता — "आज तो नहीं मिला, लेकिन कल

मैं फिर कोशिश करूंगा । अल्लाह ने चाहा तो जरूर कुछ मिलेगा ।" वह कभी निराश नहीं होता था और सदा मस्त रहता था । ईश्वर-आस्था के संदर्भ में यह चोर हसन का गुरु था । हसन× हसन का दूसरा गुरु एक कुत्ता था । वह कुत्ता खूब प्यासा था । अपनी प्यास बुझाने वह एक नदी किनारे गया पर उसमें अपनी परछाईं देखकर डर गया और भौंकने लगा । वह पुनः नदी के पास गया, पुनः ऐसा हुआ । ऐसा कई बार हुआ । पर उसे बहुत प्यास लगी थी । अन्ततः उसने नदी में छलांग मार ही दी । छलांग मारते ही परछाईं गायब हो गई और हसन ने कुत्ते को अपना गुरु मानते हुए उससे यह बोध ग्रहण किया कि डर के बावजूद व्यक्ति को छलांग लेनी होती है । बिना उसके सत्य की, ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती ।[31]

"नाम सुमिर मन बावरे" नामक ग्रंथ में संकलित चौथे प्रवचन में प्रेम के विषय में कहते हैं —" मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं वह कुछ और है । मीरा ने किया, कबीर ने किया, नानक ने किया, जगजीवन ने किया । तुम्हारी फिल्मोंवाला प्रेम नहीं, नाटक नहीं । और जिन्होंने यह प्रेम किया उन सबने यही कहा कि वहां हार नहीं है, वहां जीत ही जीत है । वहां दुःख नहीं है, वहां आनंद× आनंद की पर्त पर पर्त खुलती चली जाती है । और अगर तुम इस प्रेम को न जान पाए तो जानना, जिंदगी व्यर्थ गई ।" [32]

ओशो कवि है, चिंतक है । प्रत्येक बड़ा कवि असंदिग्धतया तत्त्वज्ञ होता है । यहां ओशो की एक कविता उद्धृत करने का उपक्रम है —

मेरा काम ऐसा नहीं है
जैसे किसी चित्रकार का ।
मैं जिस चित्र में रंग भर रहा हूं
वह कभी पूरा नहीं हो सकता ;

यह चित्र बनता ही चला जाएगा ।
अपनी अंतिम श्वास तक भी
मैं इस चित्र में रंग भरता रहूंगा —
फिर भी चित्र अधूरा ही रहेगा ।
अधूरे रहने का अर्थ है, विकास ।
के पूरे हो जाने का अर्थ है मृत्यु ।
जो चीज पूरी हुई वह मर गई ।
जो चित्र मैंने बनाना शुरू किया है
वह अधूरा रहेगा —
जबकि मैं उसे
पूरा करने की कोशिश करता रहूंगा,
लेकिन यह अस्तित्व का स्वभाव है
कि वह पूरा नहीं हो सकता ।
और यह मेरा चित्र नहीं है
जो लोग मेरे साथ हैं
यह चित्र उनका भी है ।
जब मैं चला जाऊं
तुम्हें तब भी इसमें रंग भरते रहना है ।
इस चित्र में नए फूल लगते रहें,
नई कोंपलें फूटती रहें
कभी भी इसे मरने मत देना
दूसरे शब्दों में,
इस चित्र को कभी पूरा मत होने देना ।
इसे पूरा करने की हर कोशिश करना,
लेकिन कभी इसे पूरा मत होने देना ।
इसीमें सौन्दर्य है कि
जीवन सदा बहता रहे,
बदलता रहे और
कभी उसका पूर्णविराम न आए ।

जीवन सदा मध्यबिन्दु में ही रहता है ।
न तुम जीवन के आदि को जानते हो
न जीवन के अंत को जानते हो ।
जीवन एक प्रक्रिया है ;
एक प्रवहमान प्रक्रिया
एक नदी जो बहती चली जाती है ।
यही जीवन का सौन्दर्य है ,
यही जीवन की गरिमा है । " 33

प्रस्तुत कविता प्रतीक-योजना , शब्द-चयन , भावाभिव्यक्ति , अलंकार , शब्द-लालित्य , चिंतन-वैभव किसी भी लिहाज़ से कमतर नहीं है । कविता कविता है । फिर चाहे वह किसीके भी द्वारा क्यों न लिखी गई हो या कही गई हो ।

इसी प्रकार निम्नलिखित कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए :-

" मैं तुझे तुम्हारा पता नहीं दे सकता
मुझे मेरा पता है
और कैसे मुझे मेरा पता लगा ,
उसकी विधि जरूर तुमसे कह सकता हूं
कैसे खोदा मैंने अपना कुआँ
कैसे पाया अपना जलस्रोत
उसकी विधि तुमसे कह सकता हूं ।
उस विधिको भी जड़ता से मत पकड़ लेना

× × ×

वे सोचते हैं कि मिल गई बाइबिल ,
मिल गया कुरान ,
मिल गये वेद ,
अब और क्या करना है ?
इनको कंठस्थ करें ।

ग्रामोफोन रिकार्ड हो जाओगे,
खुद का पता न मिलेगा। " 34

उक्त पंक्तियों को भी उत्कृष्ट कविता की कोटि में रखा जा सकता है। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि किसी विषय पर प्रवचन देते-देते भावावेश में ओशो जो पंक्तियां बोल-भर जाते हैं, वे काव्य का अमर ~~शृंगार~~ शृंगार बन जाती हैं। इस संदर्भ में निम्नांकित पंक्तियां उद्धरणीय रहेंगी —

" मत बन सांस अधीर, सहारा
कोई और मिलेगा
रो मत मृदुल समीर, दुआरा
कोई और खुलेगा
प्रभु-पूजा का दीप, देह का
यह उपमान बहुत है
गंगाजल कहलाएं आंसू
यह सम्मान बहुत है
गा प्रभात का गीत, भीत हो
अंधियारा पिघलेगा
मत बन सांस अधीर, सहारा
कोई और मिलेगा
रो मत मृदुल समीर, दुआरा
कोई और खुलेगा। " 35

अष्टावक्र की "महागीता" पर ओशो ने आठ भागों में उसका भाष्य किया है। जनक अष्टावक्र से तीन प्रश्न पूछते हैं —

"कथं ज्ञानमवाप्नोति कथं मुक्तिर्भविष्यति।
वैराग्यं च कथं प्राप्तमेतद् ब्रूहि मम प्रभो ।। " 36

इसके उत्तर में अष्टावक्र ने कहा था — " साक्षी बनो। इसीसे होगा ज्ञान, इसीसे होगा वैराग्य, इसीसे होगी मुक्ति। "

प्रश्न तीन थे , उत्तर एक है । " ~~अक्ष~~ तू न पृथ्वी है , न जल , न वायु, न आकाश -- ऐसी प्रतीति में अपने को थिर कर । मुक्ति के लिए आत्मा को , अपने को इन सबका साक्षी चैतन्य जान । .... इसमें 'साक्षी' सूत्र है । इससे महत्त्वपूर्ण सूत्र और कोई नहीं । देखने वाले बनो । जो हो रहा है उसे होने दो । ... तुम द्रष्टा हो । इस बात को ग्रहण करो । " 37

इसी प्रवचन -लेख में अष्टावक्र का यह उत्तर भी ध्यातव्य है कि यदि तू मुक्ति चाहता है , तो हे तात ! विषयों को विष के समान छोड़ दे ; और क्षमा , आर्जव , दया , संतोष और सत्य का अमृत के समान सेवन कर । यहां पर उक्त गुणों की बड़ी सुंदर व्याख्या ओशो ने की है । गीता के सम्मुख अष्टावक्र की महागीता का माहात्म्य करने वाले भी ओशो पहले चिंतक हैं । इस संदर्भ में उनके निम्नलिखित विचार ध्यातव्य रहेंगे --

"सबसे बड़ी बात यह है कि न समाज , न राजनीति , न जीवन की किसी और व्यवस्था का कोई प्रभाव अष्टावक्र के वचनों पर है । इतना शुद्ध भावातीत वक्तव्य , समय और काल से अतीत , दूसरा नहीं है । शायद इसीलिए अष्टावक्र की गीता , अष्टावक्र की संहिता का बहुत प्रभाव नहीं पड़ा । कृष्ण की गीता का बहुत प्रभाव पड़ा । पहला कारण : कृष्ण की गीता समन्वय है । सत्य की उतनी चिंता नहीं है जितनी समन्वय की चिंता है । समन्वय का आग्रह इतना गहरा है कि अगर सत्य थोड़ा खो भी जाए तो कृष्ण राजी हैं । कृष्ण की गीता ~~खिचड़ी~~ खिचड़ी जैसी है ; इसीलिए सभी को भाती है , क्योंकि सभी का कुछ न कुछ उसमें मौजूद है । ऐसा कोई संप्रदाय खोजना मुश्किल है जो गीता में अपनी वाणी न खोज ले । ऐसा कोई व्यक्ति खोजना मुश्किल है जो गीता में अपने लिए कोई सहारा न खोज ले । इन सबके लिए अष्टावक्र की गीता बड़ी कठिन होगी । अष्टावक्र समन्वयवादी नहीं है --

सत्यवादी हैं । सत्य जैसा है वैसा कहा है — बिना किसी लाग-लपेट के । सुननेवाले की चिंता नहीं है । सुननेवाला समझेगा , नहीं समझेगा , इसकी भी चिंता नहीं है । सत्य का ऐसा शुद्धतम वक्तव्य न पहले कहीं हुआ , &x न फिर बाद में कभी हो सका । कृष्ण की गीता लोगों में प्रिय है , क्योंकि उसमें अपना अर्थ निकाल लेना बहुत सुगम है । कृष्ण की गीता काव्यात्मक है : दो और दो पांच भी हो सकते हैं , दो और दो तीन भी हो सकते हैं । अष्टावक्र के साथ कोई खेल संभव नहीं । वहां दो और दो चार ही होते हैं ।" [38]

कई बार लोग ओशो को प्रश्न करते थे और उस प्रश्न के उत्तर में वे जो कहते थे उसे हम एक अच्छा खासा लेख या निबंध कह सकते हैं । ऐसे प्रश्नोत्तरों में ओशो के कई तरह के विचार व्यक्त हुए हैं । यहां उनकी पुस्तक "चल हंसा उस देस " से कुछ पंक्तियां उद्धृत की जा रही हैं :— " सन उन्नीस सौ सैंतालीस से पहले कोई पचास साल पूरा मुल्क इस आशा में जी रहा था कि आजादी और सब ठीक हो जायेगा । और जिनको हम बहुत बुद्धिमान लोग कहते हैं , उन्होंने भी मुल्क को यही समझाया था कि सारी परेशानी का कारण अंग्रेज है । अंग्रेज गये कि सब परेशानी गयी । सरासर झूठी यह बात थी । ..... फिर बीस-बाइस साल गुजर गये । अब हम जानते हैं कि अंग्रेज हमारी सारी मुसीबत का कारण न था । .... अब जैसे मुल्क कह रहा है कि समाजवाद आ जायेगा , तो सब ठीक हो जायेगा । हम फिर वही पागलपन की बात कर रहे हैं । .... बहुत मुश्किल है यह बात कहना कि अगर अंग्रेज की गुलामी न होती , तो हम इतनी भी अच्छी हालत में न होते । क्योंकि अंग्रेजों ने जब इस मुल्क को अपने हाथों में लिया था तो हमारी हालतें इतनी बदतर थीं कि जिसकी हमें कोई कल्पना नहीं है । अब हमें एक खयाल लग रहा है कि पूंजीवाद किसी तरह नष्ट हो जाये ; सारी बीमारी की जड़ वह है । उसे

नष्ट करके हम फिर एक मुसीबत में पड़ेंगे । हमको लगेगा कि पूंजीवाद तो नष्ट हो गया , लेकिन जो सपने संवारे थे , वे फिर भी नहीं आये । वे नहीं आ सकते । ऐसे नहीं आते । मुल्क के पास एक विचार करनेवाला मस्तिष्क नहीं है कि चीजों को उनकी गहराई में देखें और सोचें और समझें । अगर एक बड़ा मकान है और उस मकान के चारों तरफ छोटे-छोटे झोंपड़े हैं , तो कोई भी आदमी चौरस्ते पर खड़े होकर यह कह सकता है कि झोंपड़े को छोटा कर-करके यह मकान बड़ा हो गया है । और यह बात सबको ठीक मालूम पड़ेगी कि बात ठीक है । .... लेकिन यह बात बिलकुल ही गलत है और उलटी बात सच है । ये दस छोटे झोंपड़े सिर्फ इसलिए कि एक बड़ा मकान बीच में उठा है , नहीं तो ये जिंदा भी नहीं रहते , ये होते ही नहीं । क्योंकि एक बड़ा मकान जब उठता है , तो एक राज बनता है , एक इंजीनियर काम करता है , मजदूर मिट्टी ढोता है , कोई गड्ढा खोदता है , कोई लकड़ी काटता है । एक बड़ा मकान जब बनता है , तो उसके आसपास पचास छोटे मकान , बड़े मकान के बनने की वजह से बनते हैं । " 39

उपर्युक्त उदाहरण में हम देख सकते हैं कि ओशो के चिंतन में हमें नवीनता के आयाम दृष्टिगत होते हैं । उनकी शैली सरल और सुबोध होती है । उदाहरण सचोट होते हैं ।

"कबीर-वाणी" पर ओशो की एक पुस्तक है — " सुनो भई साधो " । उसमें ओशो ने कबीर के पदों और साखियों की जो व्याख्या प्रस्तुत की है अश्रुतपूर्व है । ओशो ने तो और भी बहुत कुछ कहा और उनके अनुयायियों ने उसे ग्रन्थस्थ किया है , लेकिन और कुछ न होता तो भी , केवल यही एक ग्रंथ उन्हें हिन्दी साहित्य में स्थान दिलाने के लिए काफी रहता । कबीर के सुप्रसिद्ध पद "झीनी झीनी बिनी चदरिया " की कितनी सुंदर-सटीक व्याख्या उन्होंने की है । वैसे तो वह पूरा प्रकरण पठनीय है , यहाँ केवल उसका एक छोटा-सा

अंश प्रस्तुत है —

"सोई चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ी के मैली किनी
चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़ी , ज्यों की त्यों धरि दिनी चदरिया ।"

अब इसकी व्याख्या ओशो जो करते हैं — " कबीर यहां एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कह रहे हैं , सूक्ष्म हैं , और गौर से समझें । ... तीन प्रतीक उन्होंने चुने — सुर , स्वर्ग में रहने वाला देवता , नर-साधारण मनुष्य और मुनि — त्यागीजन । इन सबने वही चादर ओढ़ी , लेकिन कबीर कहते हैं कि ' ओढ़ी के मैली किनी चदरिया' — और इन तीनों ने मैली कर दी । ... सुर का अर्थ है : स्वर्ग में रहनेवाला देवता । देवता भोग के शुद्ध प्रतीक हैं । वे सिर्फ भोगते हैं । स्वर्ग का अर्थ है : भोगस्थल । ... भोग से चादर मैली होती है । क्योंकि भोगी का अर्थ है : जो अपनी वासनाओं में पूरी तरह तादात्म्य करके भटक गया । भूख लगी तो उसने समझा कि मैं भूख हूं । वासना जगी तो उसने समझा कि मैं वासना हूं । भोगी का अर्थ है : वासनाओं के साथ जिसने अपने को इतना जोड़ लिया कि कोई फासला न रहा । (अतः) स्वर्ग के देवता भी गिरेंगे वापिस । xxxxx स्वर्ग कोई अंतिम अवस्था नहीं है । .... जब भी कोई मुनि ज्यादा त्याग करता है , इन्द्र घबराता है । ... इन्द्र की वही दशा है , जो दिल्ली में राजनीतिज्ञों की है । इन्द्र हो या इन्दिरा — फरक नहीं पड़ता । ... भोगी हमेशा त्यागी (मुनि) से डरा रहेगा । क्योंकि त्यागी कर क्या रहा है , त्याग कर क्यों रहा है ? त्यागी इसलिए सारा शोरगुल मचा रहा है , तपश्चर्या कर रहा है कि भोग का अधिकारी हो जाए । तो भोगी और त्यागी (सुर और मुनि) में बहुत फर्क नहीं है । भोगी और त्यागी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । उनकी कामना एक ही है । एक को मिल गया है , दूसरा मिल जाये उसकी आशा में जी तोड़

के लगा हुआ है । इसलिए त्यागी भी सपने भोग के ही देखता है । उसने यहां सारी स्त्रियां छोड़ दी हैं , अप्सराओं के सपने देख रहा है । ... त्यागी और भोगी की नज़र में बुनियादी फर्क नहीं पड़ता । भोगी धन के पीछे पागल है , त्यागी धन छोड़ने के पीछे पागल है । लेकिन दोनों की नज़र धन पे लगी है । ... दोनों के मध्य में मनुष्य है । कबीर कहते हैं , त्यागी और भोगी दोनों नष्ट कर देते हैं चदरिया को । और बीच में जो मनुष्य है , वह खिचड़ी जैसा है । सुबह त्यागी , दोपहर भोगी ; श्याम त्यागी , रात भोगी । वह चौबीस घण्टे में कई दफा बदलता है । .... तुम अगर अपना कैलेण्डर रखो , तो तुम बराबर लिख सकते हो : सुबह त्यागी, दोपहर भोगी , फिर त्यागी , फिर भोगी , फिर मंदिर चले गये , फिर दुकान आ गये , फिर दुकान पे बैठे मंदिर की सोचने लगे , फिर मंदिर में बैठे दुकान की सोचने लगे । तुम पाओगे कि तुम दोनों का मिश्रण हो । जब दोनों शुद्ध त्यागी और भोगी , नष्ट कर देते हैं , तो तुम तो दोहरा नष्ट कर दोगे । ... त्यागी बाएं करवट सो रहा है , भोगी दाईं करवट सो रहा है । तुम करवटें बदल रहे हो । वे कम से कम थिर हैं , अपनी-अपनी दिशा में लगे हैं । तुम घूम रहे हो ।

लेकिन दास कबीर ने बड़े सम्हाल के ओढ़ी , बड़ी सावचेतता से ओढ़ी , बड़े जतन से , होश से ओढ़ी , बड़े ध्यान से ओढ़ी — और " ज्यों की त्यों धरि दिनी चदरिया " — जैसी दी थी परमात्मा ने , वैसी ही वापस कर दी । यह मोक्ष है , यह मुक्त की अवस्था है । तुम जो मिला है , उसे वैसा ही वापस कर दो बिना विकृत किए । बच्चा पैदा होता है , साफ चादर लेके पैदा होता है । सब स्वच्छ , निर्दोष । फिर विकृति आनी शुरू होती है , इकट्ठी होनी शुरू होती है । बूढ़ा मरता है खंडहर की भांति , सब बरबाद । हाथ में कुछ भी उपलब्धि नहीं ।

जो पास था वह भी गंवा के । कबीर कहते हैं कि ज्ञानी भी मरता है, लेकिन ज्ञानी उसको बचाए रखता है, जो मिला था । उस चादर को वैसा ही निर्दोष रखता है । कैसे रखोगे इस चादर को निर्दोष ? कबीर गृहस्थ हैं, पत्नी है, बच्चा है, कमाते हैं, घर लाते हैं — फिर भी कहते हैं ~~दास~~ दास कबीर जतन से ओढ़ी । कला क्या है इस चदरिया को बचा लेने की ? कला है : होश । कला है : विवेक । कला है : जागृत चेतना । करो — जो कर रहे हो, जो करना पड़ रहा है । जो नियति है, पूरी करो । भागने से कुछ प्रयोजन नहीं । लेकिन करते समय कर्ता मत बनो । मंदिर जाओ — प्रार्थना करो — कर्ता मत बनो । कर्ता परमात्मा को ही रहने दो । तुम काहे झंझट में बीच में पड़ते हो । कर्ता एक वही संभाले । तुम साक्षी रहो । तुम जैसे अभिनेता हो — जैसे एक पार्ट तुम्हें मिला है, एक रोल, ड्रामा का एक हिस्सा है, वह तुम्हें पूरा कर देना है । जैसे तुम राम बने, रामलीला में, तो जरूर तुम्हें रोना है । सीता चोरी जायेगी, वृक्ष से पूछना है, " कहां है मेरी सीता ", चीख-पुकार मचाना, सब करना है, लेकिन भीतर, भीतर न तुम्हारी ~~मम~~ सीता खोयी है, न कोई मामला है । अभिनय है । पर्दे के पीछे जाके तुम फिर गपशप करोगे, चाय पिओगे । रावण से चर्चा करोगे — पर्दे के पीछे । पर्दे के बाहर धनुषबाण लेकर खड़े हो जाओगे । जीवन एक लीला है । अगर तुम जतन से चल सको, तो जीवन एक अभिनय है । "40

अभिप्राय यह कि कबीर के इस पद की इतनी सुंदर व्याख्या हमने अद्यावधि हिन्दी के किसी विद्वान के मुंह से नहीं सुनी । मेरा तो अभिमत है कि इसे कबीर के पाठ्यक्रम में संदर्भ पुस्तक के रूप में रखना चाहिए ।

ओशो साहित्य से हमारी साहित्य विषयक दृष्टि एवं अवधारणाएं विस्तृति के आकाश को स्पर्श करती हैं । उदाहरणतया उन्होंने

जापानी हाईकू-कवि बाशो के कुछ हाईकुओं की जो काव्यमय व्याख्या प्रस्तुत की हैं, वह हिन्दी साहित्य के अध्येताओं के लिए एक अनोखी वस्तु हो सकती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

§1§

प्राचीन पोखरा
एक मेढ़क की छलांग
विराट सन्नाटा।

इसकी व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं — " इस विराट सन्नाटे में हम छोटी-छोटी ध्वनियां हैं। हमारे और अस्तित्व के बीच अधिक अंतर नहीं है — उतना ही जितना ध्वनि और निःशब्दता के बीच। इस हाईकू में वह क्या कहना चाहता है? वह कह रहा है, यह प्राचीन जगत ... उसमें तुम्हारा होना सिर्फ एक छलांग है — सन्नाटे में उठी एक ध्वनि। और फिर तुम विदा हो गये। सन्नाटा और गहराया। इस तरह बाशो पूरे जगत को क्षणिक स्वप्निल बना देता है। यह विराट सन्नाटा तुम्हारा अन्तर्तम है। यही सम्पूर्ण अस्तित्वकामी अन्तर्तम है। " 41

§2§

पपिहा।
दिनभर गाता रहता
और दिन कितना छोटा।

इस पर ओशो की टिप्पणी देखिए — " बाशो कह रहा है, तुम दिन भर काम करते रहते हो। जिन्दगी भर काम करते हो और अपनी आत्मा की महिमा को कभी नहीं जान पाते। तुम्हारे काम में तुम्हारी क्षुद्र गति-विधियों में समय बीत जाता है। " 42
यहां मुझे मेरे निर्देशक महोदय प्रोफेसर पारुकांत देसाई की दो पंक्तियों का बरबस स्मरण हो रहा है — " छोटी छोटी बातों में जिन्दगी गुजर गयी / दो कदम चले नहीं कि कंचरी उतर गयी। " 43

(3)

मरणासन्न झिंगुर
उसका गीत
जीवन से कितना ओतप्रोत ।

ओशो इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं — " झिंगुर मर रहा है, फिर भी गीत गा रहा है । हर सजग और सतर्क व्यक्ति की यह स्थिति होनी चाहिए कि मरते समय भी वह जीवन से ओतप्रोत हो, गीत गाता हो — और तब फिर मौत आती नहीं । " 44

अफ्रिका में एक विशेष किस्म का जानवर मिलता है, जिसके संदर्भ में यह कहा जाता है कि उनमें नर पशु, मादा से संभोग के पश्चात् उसी अवस्था में मृत अवस्था को प्राप्त हो जाता है । यहाँ भी मृत्यु की छाया में जीवन के उत्सव को मनाने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । उर्दू साहित्य का शमा-परवाना का प्रतीक तथा महाभारत-वर्णित पांडु-माद्री के संभोग का मिथ भी यहाँ तुलनीय हो सकता है ।

(4)

पीले गुलाब की पंखुड़ियाँ
गड़गड़ाहट
एक जलप्रपात ।

इसके संदर्भ में ओशो कहते हैं — " सदा स्मरण रखना, हाईकू शब्दों में बनाया हुआ शब्द-चित्र है । बाशो चुपचाप ध्यान कर रहा होगा । जब वह अपनी आँखें खोलता है, तो उसे दिखाई देता है — पीले गुलाब की पंखुड़ियाँ, बादलों की गड़गड़ाहट, जलप्रपात । न्यूनतम शब्दों का उपयोग किया गया है । हाईकू टेलीग्राम है । एक भी अनावश्यक शब्द नहीं । तुम इस छोटे-से हाईकू में एक भी दूसरा शब्द नहीं जोड़ सकते । आर न ही इसमें से एक शब्द निकाल सकते हो । निस्तब्ध मन में ऐसा ही होता है—

वह आँखें खोलता है, बाहर देखता है : गुलाब की पंखुड़ियां, प्रचण्ड गड़गड़ाहट और जलप्रपात। हाईकुओं को समझने का एक ही तरीका है। तुम उन्हें इस तरह समझो कि ध्यान की गहराइयों में डूबे हुए सद्गुरुओं के बनाए हुए चित्र हैं। अन्यथा वे खोखले शब्द हैं — असंबद्ध व्याकरणहीन, भाषा के प्रति लापरवाह वे कुछ कहते नहीं, वे कुछ दिखाते हैं, कि यदि तुम ध्यान कर रहे हो और ध्यानस्थ स्थिति में तुम आँखें खोलते हो, तो तुम जो भी देखते हो वह इतना सुंदर, इतना काव्यमय इतना सुरीला है कि ... झेन सद्गुरु अपने साथ एक नोटबुक रखते हैं और उसमें कुछ शब्द लिख देते हैं। वे शब्द वस्तुतः उसका प्रतिनिधित्व करते हैं जो उन्होंने देखा। वे शब्दों का विस्तार नहीं करते, उसकी बहुत बड़ी कविता नहीं बनाते। यह तो ध्यानियों द्वारा की गई अस्तित्व के सौन्दर्य की टिप्पणियां हैं जिसके प्रति गैरध्यानी बिल्कुल मूर्च्छित रहते हैं। "[45]

हाईकू की इतनी सुंदर व्याख्या कदाचित् हिन्दी के आधुनिकतम काव्य-समीक्षकों के यहां भी उपलब्ध नहीं होगी। यहां एक बात के उल्लेख का मोह संवरण नहीं कर सकता। गुजराती में कविश्री स्नेहरश्मि तथा हिन्दी में अहमदाबाद के कवि डा. भगवतशरण अग्रवाल ने इस प्रकार के कई हाईकू लिखे हैं। हाईकू कभी-कभी गहन चिंतन-कणिका भी हो जाया करता है। यथा —

" चिन्ता !
मन के तने पर
चढ़ती-उतरती चिटियाँ !"[46]

<u>ओशो-साहित्य पर अन्य साहित्यकारों की टिप्पणियां :</u>

ओशो का हिन्दी साहित्य में जो योगदान है, वह स्वतः स्पष्ट है तथा अमृता प्रीतम, यशपाल जैन, रमानाथ अवस्थी, कन्हैयालाल

नन्दन , गोविन्द व्यास , सुश्री उर्मिल सत्यभूषण , डा. वेदप्रताप वैदिक , डा. कुंअर बेचैन , डा. बलदेव वंशी , डा. लक्ष्मीचन्द जैन, निर्मलकुमार फड़कुल , डा. दामोदर खड़से , डा. पु.ल. भांडारकर , निरुपमा सेवती प्रभृति साहित्य जगत के जाने-माने हस्ताक्षरों ने ओशो रजनीश के हिन्दी कृतित्व को नकारते हुए उनके योगदान को स्वीकृति की मुहर लगा दी है ।

प्रसिद्ध कवयित्री व लेखिका अमृता प्रीतम ने ओशो के विषय में कहा है —" दोस्तो , साहित्य को एक काया मानकर कहना चाहती हूं कि जब किसीके आने से उस काया का अंग-अंग खिलने लगा तो आनेवाले का नाम कहानीकार हुआ , और जब किसीके आने से उस काया की सांस बौराने लगी तो तो उस आने वाले का नाम कवि हुआ ; और जब किसीके आने से उस काया के प्राण दीपक से जलने लगे , तो उस आने वाले का नाम ऋषि हुआ और जब इन सबसे तरंगित उस काया की आंखों में प्रेम और प्रार्थना का एक आंसू भर आया तो उस आंसू का नाम रजनीश हुआ । ओशो - रजनीश की रचना में हजार-हजार कहानियां लिपटी हुई हैं , जिनके कण आस-पास की ज़िन्दगी से भी लिए गए हैं और सदियों की छाती में रखी हुई गाथाओं से भी , और रजनीश जब उन्हें यथार्थ के नये तल पर ले आते हैं , तो वे कहानियां समय और स्थान की सीमा से मुक्त हो जाती हैं ।" 47

इसी संदर्भ में अमृताजी आगे कहती हैं — "और उसी अनुभव में उतरने की तैयारी में रजनीश हमारे सामने एक बिन्दु रखते हैं , अपने अनुभव का , और उसकी बात करते हुए उन सबका नाम बीच-बीच में लेते हैं जिनके अनुभव को वे अपने अनुभव के बल पर पहचान पाए । इसलिए उनके बिन्दु का नाम कभी कृष्ण हो जाता है , कभी बुद्ध , कभी महावीर , कभी मीरा , कभी राबिया , कभी क्राइस्ट मोहम्मद और नानक । और उसी बिन्दु में जब कबीर छलकता है ,

तो वे कहते हैं : कबीर एक आग है , उसे पीना है । इसके अंगार से अपने दीये को जलाना है । तुम्हारे अन्तर में दीया जल जाये तो समझना कबीर को समझ लिया । तुम्हारे अन्तर में फूल झरने लगे तो समझना कबीर को समझ लिया । तुम्हारे अंतर में बांसुरी बजने लगे तो समझना कबीर को समझ लिया । तुम्हारे अन्तर के आसमान पर इन्द्रधनुष दिखने लगे तो समझना कबीर को समझ लिया । कबीर तो बहती हुई वायु है , परमात्मा की सुगंधी से भरी हुई । और इस वायु में रजनीश जब सांस लेने की बात करते हैं , तो हमारी चेतना में एक कम्पन-सा होता है और हमारे सांस बौराने लगते हैं । यह सब कविता नहीं है , एक बहती हुई पवन है , कविता की सुगंधी से भरी हुई । " 48

यहां ओशो ने कबीर के संबंध में आग , दीप का जलना ,फूलों का झरना ,बांसुरी का बजना , इन्द्रधनु का उग आना जैसे सटीक प्रतीकों का प्रयोग किया है । वह विशुद्ध कविता ही है । यहां ओशो का "कवि-रूप" दृष्टिगत होता है , तो साथ ही साथ उनके कबीर-विषयक विश्लेषण में हमें उनमें बैठे एक सजग प्राणवंत समीक्षक के दर्शन होते हैं । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर के संबंध में कहा है — " वे सिर से पैर तक मस्तमौला , स्वभाव से फक्कड़ , आदत से अक्खड़ , भक्त के सामने निरीह , भेषधारी के आगे प्रचण्ड , दिल के साफ , दिमाग के दुरुस्त , भीतर से कोमल , बाहर से कठोर , जन्म से अस्पृश्य , कर्म से वन्दनीय थे । ... कबीर मस्तमौला थे । जो कुछ कहते थे , साफ कहते थे । जब मौज में आकर रूपक और अन्योक्तियों पर उतर आते थे तब जो कुछ कहते थे , वह सनातन कविता का शृंगार होता था । " 49

अब यदि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी का उक्त कथन साहित्य-समीक्षा की परिधि में आता है , तो ओशो रजनीश का कबीर-

विषयक तथा उनके भी अतिरिक्त हिन्दी के अनेकानेक संत-कवियों के संबंध में उनके विश्लेषण तथा टिप्पणियां भी साहित्य की परिसीमा में ही आयेंगे ।

हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखक व आलोचक डा. यशपाल जैन ने ओशो रजनीश के साहित्यिक योगदान के संबंध में लिखा है — " ओशो का विपुल साहित्य हिन्दी में उपलब्ध है । लेकिन हिन्दी साहित्य के जो समीक्षक हैं उन्होंने ओशो को ओर ध्यान नहीं दिया है । उनको एक धर्मगुरु के रूप में देखा । माना कि ओशो का जितना साहित्य उपलब्ध है , वह लिखा नहीं गया , कहा गया है । और चूंकि वे उनके प्रवचनों के संग्रह हैं , इसलिए साहित्य की कसौटी पर उनका मूल्यांकन करना आवश्यक नहीं है । इसलिए यह मानकर कि वे तो धर्म की , अध्यात्म की बात करते थे , उनको एक तरफ कर दिया , और उनके साहित्य का उस दृष्टि से मूल्यांकन नहीं किया । "50

परंतु इसी संदर्भ में अपना अभिमत देते हुए उन्होंने कहा है — " मेरा अपना मानना यह है कि ओशो ने अपने प्रवचनों के द्वारा जो साहित्य दिया , उस साहित्य ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है । मैंने इन प्रवचनों के अतिरिक्त उनके बहुत से प्रवचन पूना में सुने और मेरा उनका संबंध तो उस समय से था जब वे जबलपुर कालेज में पढ़ाते थे । .... मुझे ऐसा लगता है कि यह जो हिन्दी साहित्य की समीक्षा की कसौटी है , उस कसौटी पर हम अगर उनके प्रवचनों के संग्रह करें, या जो एक पैमाना हमारे हिन्दी के समीक्षकों ने अपना बना रखा है , उस पर अगर हम उसे कसने का प्रयत्न करें , तो हो सकता है कि वह साहित्य की उस परिभाषा में , उस पैमाने से उपयुक्त न बैठें । लेकिन आखिर साहित्य है क्या ? साहित्य मौलिक विचारों की अभिव्यक्ति है । यह जो ओशो ने कुछ दिया वह मौलिक विचार ही हैं । .... एक दूसरी बात मैं और कहा करता हूं कि शब्द से

अर्थ निकल जाता है, तब शब्द खोखला बन जाता है और उस शब्द के द्वारा जो साहित्य की रचना होती है, वह भी खोखली होती है। हां, ओशो ने जो सबसे बड़ा काम किया वह यह है कि शब्द के अंदर अर्थ भरा। इसलिए उनका शब्द सार्थक हुआ। और उस शब्द के द्वारा सार्थक शब्द के द्वारा, उन्होंने जिस साहित्य की रचना की, वह साहित्य सार्थक है। .... ओशो का हिन्दी में जितना साहित्य है, अगर उन पुस्तकों को हम देखें, तो हमें पता लगेगा कि उनके द्वारा साहित्य कितना समृद्ध हुआ। इसमें मानव बोलता है, मानव की आत्मा बोलती है, मानव का हृदय बोलता है और जिस साहित्य में इस तरह की गुणवत्ता हो, उस साहित्य को हम अलग नहीं कर सकते। .... आवश्यकता इस बात की है कि उनके साहित्य का उस दृष्टि से मूल्यांकन हो। और जब वह मूल्यांकन होगा तो मेरा दावा है कि उनका साहित्य सर्वोत्कृष्ट हिन्दी साहित्य की कोटि में आयेगा, इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। " 51

हिन्दी साहित्य के एक अन्य लब्धप्रतिष्ठ लेखक व गीतकार रमानाथ अवस्थी ने तो यहां तक कह दिया है कि " मैं तो बल्कि यह प्रार्थना करूंगा कि ओशो के लिए यह सोचना कि साहित्य में उनकी क्या जगह है, यह प्रश्न उनके लिए उचित नहीं है। होना यह चाहिए कि साहित्य ओशो का कितना ऋणी है। जब उनको पढ़ता हूं तो लगता है कि उसके बाद और कुछ पढ़ने की इच्छा कई दिनों तक नहीं होती है। यह क्या है ? यही साहित्य है। जो मुझको बिलकुल एक बार खाली कर देता है, भीतर से सारा कूड़ा-करकट मेरा निकाल करके बाहर फेंक देता है। वह सबसे बड़ा साहित्य है। वर्ना आपके साहित्य को आप देख ही रहे हो, इस देश में जैसा हो रहा है कि आदमी एक चीज लिखता है हमारे यहां, उसके प्रचार के लिए उससे कई गुना ज्यादा लिखता है कि लोग उसको

जाने कि यह क्या है । .... लेकिन जो बड़े आदमी की रचना है, वह आपको बताती है कि आपके भीतर जो सृजन है, आपके भीतर जो शब्द है, वह खुद फूटने लगता है । ओशो को मैं एक शब्द का ऐसा सेतु मानता हूं जिस पर चलकर, कोई आदमी वैचारिकता से पूर्ण होकर रचना कर सकता है । और जो ऐसा व्यक्तित्व है वह साहित्य के लिए गर्व करने की चीज है । उनके सृजन का मूल्यांकन करने वाले लोग आगे आयेंगे । ऐसा नहीं है कि अगर आज का आलोचक बेचारा नहीं देख रहा है उस पहाड़ को तो और कोई भी नहीं देख पायेगा आगे । क्योंकि समय ही केवल समर्थ है और समय एक सर्जक के लिए हमेशा-हमेशा ताजा रहता है । " [52]

तो श्री कन्हैयालाल नन्दनजी×भे ओशो को साहित्य का सबसे बड़ा व्याख्याकार मानते हैं ।[53] साहित्य का व्याख्याकार प्राचीन परंपरा में आचार्य और आज की परंपरा में आलोचक या समीक्षक कहा जाता है, और जो आलोचक या समीक्षक होता है, उसकी गणना भी साहित्यकारों के अन्तर्गत ही होती है । अतः इस दृष्टि से भी ओशो रजनीश के साहित्यिक योगदान को नकारा नहीं जा सकता ।

श्री गोविन्द व्यासजी ओशो को मूलतः गद्यगीतकार मानते हैं । हिन्दी में गद्यगीत की विधx विधा आरम्भ हुई राय कृष्णदास के आसपास । बादमें महादेवीजी ने उसे बहुत ऊंचाइयों तक पहुंचाया और उसके बाद कोई व्यक्ति नज़र आता है तो मुझे ओशो के अलावा कोई दिखाई नहीं पड़ता जिसने गद्यगीत को प्रामाणिक बनाया हो । जिसने गद्यगीत को इतना व्यापक दर्शन दिया हो, इतने व्यापक सोपान दिये हों, सीढ़ी-दर-सीढ़ी जिसका विस्तार किया हो, इसलिए मैं उनको गद्यगीतकार के रूप में बहुत ऊंचे आसन पर बैठाने के लिए बड़ा आदर महसूस करता हूं, बड़ा गौरव महसूस करता हूं । " [54]

वस्तुतः क्रान्तदर्शी "व्यक्ति का साहित्य , उसका शब्द , उसका अर्थ , उसकी चेतना साधारण लोगों की समझ में कम आती है , अतः मैं बड़े मन से यह महसूस करता हूं कि ओशो जितना पढ़े जायेंगे , जितना जाने जायेंगे उतनी ही सृजन में ताजगी पैदा होगी और लोग हलके होंगे , सहज बनेंगे । "[55]

डा. वेदप्रताप वैदिक ओशो-रजनीश के गद्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं । उनके प्रवचनों को उन्होंने प्रवचन साहित्य की एक नयी विधा में रखा है ।[56] उनके साहित्यिक योगदान के सन्दर्भ में बताते हुए वे लिखते हैं —" रजनीश का साहित्य में योगदान है या नहीं , यह प्रश्न अगर आप रजनीश से पूछते तो वे क्या जवाब देते ? वही जो उन्होंने अपने प्रवचनों में दिया । उनके लिए अपने योगदान को साहित्य में मान्यता प्राप्त कराना नगण्य है । जैसे भाई रमानाथजी ने ठीक कहा कि बादल बरस रहा है , बांसुरी बज रही है , पत्ते हिल रहे हैं , सरिता बह रही है , समुद्र हुंकार रहा है , उसको कोई मान्यता की आवश्यकता नहीं है । लेकिन साहित्य अगर समझें सिर्फ कविता को , उपन्यास को , कहानी को , नाटक को , तो शायद रजनीश साहित्य की किसी भी विधा में आते नहीं हैं । [illegible] किसी भी चौखटे में उनको फिट करना आसान नहीं है । लेकिन जैसा अमृताजीने कहा , डा. जोशी ने कहा , भाई गोविन्द व्यास ने कहा , वे बड़े महान शब्दों के चितेरे थे । शैली के राज-कुमार थे , जादूगर थे । मैं गलत हो सकता हूं , लेकिन मैं महसूस कर सकता हूं और पश्चिमी समीक्षा-शास्त्रों ने कहा भी है कि शैली ही व्यक्ति है , शैली ही साहित्य है । अगर ऐसा है तो हिन्दी में , हिन्दी के गद्यकारों में , पुराने अपने जितने भी गद्यकार हुए , भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हुए , उनसे भी पहले , उनसे लेकर अब तक के जितने गद्यकार हैं , रजनीश के मुकाबले का कोई गद्यकार हिन्दी में हुआ ही नहीं । इस मायने में रजनीश अपूर्व

है । .... रजनीश को पढ़ना श्रेष्ठ कविता को पढ़ने जैसा है ... मूल बात यह है कि रजनीश आपको कितना रस प्रदान करते हैं, और उसका एक बहुत बड़ा प्रमाण 650 पुस्तकें हैं और उनके कई-कई संस्करण हैं । और मजे की बात बताऊं, जिन पुस्तकों को ज्ञान-पीठ का पुरस्कार मिला है, जरा पूछिए उनके कितने-कितने संस्करण निकले हैं । एक बार एक पुस्तक को ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया, तो मैं ने आदरणीय लक्ष्मीचन्दजी से पूछा कि इस पुस्तक के कितने संस्करण हुए हैं । तो लक्ष्मीचन्दजी ने मुझ से कहा कि बीस साल पहले शायद 1000 प्रतियां छपी थीं, और पूरे बीस साल में, इस पुस्तक की, जिसको ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला है, कुल 200 प्रतियां बिकी हैं अभी तक । उसको हम साहित्य कहते हैं । पहली बार जिस पुस्तक का नाम मैंने सुना, उसको हम साहित्य कहते हैं । जो पुस्तक लाखों लोग पढ़ते हैं, और एक बार नहीं बार-बार पढ़ते हैं, उसको हम साहित्य नहीं कहते । बहुत अच्छी बात है । जिसे आप साहित्य कहते हैं, उसे अपने पास रखिये । जिसको आप साहित्य नहीं कहते हैं, वह लोगों को झंझोड़ रहा है, रमा रहा है, रमण करा रहा है ।" 57

उनकी अप्रतिम गद्यशैली के विषय में वे कहते हैं — "वे कथावाचक हैं । व्यासशैली है उनकी, सुललित कथावाचक । लेकिन उनके व्यास क्षेत्र में समास की मणियां पड़ी हैं । एक-एक वाक्य ऐसा पिरोते हैं रजनीश कि नावक के तीर क्या होंगे । बिहारी के दोहे के लिए तो लम्बे दो वाक्य चाहिए या बीस-पचीस शब्द चाहिए । रजनीश कई बार दो-तीन शब्दों का ही एक वाक्य ऐसा उकेरते हैं कि आपको उसमें ताजमहल दिखाई पड़ता है । उसमें कलकल निनाद करती हुई गंगा बहती हुई दिखाई पड़ती है । यह जो अद्भुत रस रजनीश पैदा कर सकते हैं, मुझे नहीं लगता कि हिन्दी में आजकल किसी गद्यकार ने पैदा किया है । यह रजनीश की खूबी है ।" 58

इस संदर्भ में 8 दिसम्बर 1991 को दिल्ली में जो संगोष्ठी आयोजित हुई थी उसमें भाईश्री कन्हैयालाल नन्दन ने साहित्य में संश्लिष्टता के प्रश्न को उठाया था और ओशो के साहित्य में उसके अभाव को ×××× रेखांकित किया था ।[59]

उस संदर्भ में डा. वेदप्रताप वैदिक अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं — " संश्लिष्ट — लिखा हुआ ... मेरे भाई जो लिखे हुए वाले हैं साहित्यकार उनको कोई जानता ही नहीं है । खुद लिखे , खुद बांचे । जो बोला हुआ है , इस देश में , वही पढ़ा जाता है । वही गुना जाता है , वही जीवन में रचा जाता है । और उन्होंने लिखा क्या ? तुलसी का भी पता नहीं है कि पांडुलिपि खुद लिख-लिख कर छोड़ गए हैं , या बोल गए हैं और बाद में लिखा गया । कबीर ने तो कागद और मसी गही ही नहीं । मीरा कोई लिखने बैठी थी गीत अपने ? गीत तो फूटते थे । कबीर भी बोला । और वेद क्या है ? श्रुति । वेद लिखा नहीं गया है , बोला हुआ है । इस मायने में बोला हुआ साहित्य संश्लिष्ट नहीं होगा , यह बात मुझे आपत्तिजनक लगती है । "[60]

ओशो रजनीश के साहित्य की विध्वंसक मुद्रा को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा है — " तो विध्वंस की यह जो क्रांति उन्होंने की , वह अपने प्रवचनों से की । इसलिए रजनीश का सारा साहित्य प्रवचन साहित्य है । जैसे कथा-साहित्य होता है , उपन्यास-साहित्य , काव्य-साहित्य । यह साहित्य की अपनी एक विधा है — प्रवचन साहित्य । बोला हुआ साहित्य । और हिटलर ने अपनी किताब की भूमिका में बहुत बढ़िया वाक्य कहा है कि आजतक जो भी क्रांतियां हुई हैं विश्व में , वह लिखे हुए शब्दों से नहीं हुई हैं , बोले हुए शब्दों से हुई हैं । "दास कैपिटल" ने यूरोप को उतना नहीं हिलाया ब्रिटिश औद्योगिक समाज को ,

जितना कि "कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो " ने हिलाया , क्योंकि जब लिखा गया "कोम्युनिस्ट मैनिफेस्टो" तो उसके वाक्य के वाक्य , पैराग्राफ के पैराग्राफ , विश्वविद्यालयों में , अखबारों में , जन-सभाओं में , फेक्टरियों की नुक्कड़ सभाओं में बोले गए ।" 61

अपने इस व्याख्यान में डा. वेदप्रताप वैदिक ने ओशो-साहित्य की अहमियत पर जोर देते हुए कहा था --" और अब तो मैं कह सकता हूं कि कभी विश्वविद्यालय भी उन पर शोध करेंगे । उनके सारे कार्य पर शोध होगा ही । अगर कबीर पर शोध हो सकता है , तो रजनीश पर शोध क्यों नहीं हो सकता ? जो लोग उन पर शोध करेंगे वे पायेंगे कि समय के साथ-साथ उनके कहने की शैली में विकास हुआ है । और कई जगह साहित्यकार क्या शब्दों से खेलेंगे जो रजनीश ने खिलंडरी की है । ऐसा शब्दों को तोड़ते हैं , जोड़ते हैं , कहां से कहां मिला देते हैं , आप चमत्कृत होते हो , अहोभाव से अभिभूत हो जाते हो । क्या गजब है । कई बार आप कविता सुनते हैं , वाह वाह करने लगते हैं । वही खूबी रजनीश में है । इसलिए गालिब का एक शेर बड़ा चस्पा होता है रजनीश पर :

> "कितने शीरीं हैं तेरे लब कि गालियां खा-खाकर
> भी रकिब बेमज़ा न हुआ । "

जो कहने की अदा रजनीश की थी , जिस शैली के वे राजकुमार थे , वह जबरदस्त शैली हजार-हजार साहित्यों के लिए प्रेरणादायक है , इसलिए रजनीश को पूरी तरह साहित्य की दृष्टि से रद्द कर देना या गुरु की तरह स्वीकार कर लेना मेरे लिए संभव नहीं है । मैं उन्हें मित्र की तरह , प्रेमी की तरह , दोस्त की तरह , सोये हुए से जगाने वाले की तरह , पुकारने वाले की तरह , हमxxxxxx हमराह की तरह पसंद करता हूं और नमन करता हूं ।" 62

सुश्री उर्मिल सत्यभूषण ओशो रजनीश को नयी अर्थवत्ता के आलोक के

रूप में देखती हैं । " ओशो को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि एक युगद्रष्टा , एक चिंतक , एक साधक , एक विचारक , एक मानव-जाति का सखा हृदय के तारों को छेड़ता हुआ , हमारे मनो-मस्तिष्क के कपाटों पर मानो लगातार-लगातार दस्तकें दे रहा है । हिन्दी के कुछ साहित्यकारों में यह प्रवृत्ति बनी हुई है कि बिना सुने , बिना पढ़े , बिना देखें , पूर्वाग्रह बनाकर केवल उनको नकारते जा रहे हैं ; जबकि हिन्दी साहित्य में उनकी करीबन 300 कृतियां मौजूद हैं ।"[63] उनके साहित्यिक योगदान को स्पष्ट करते हुए उर्मिलजी कहती हैं — " वे केवल साहित्यकार नहीं है , समग्र जीवन के द्रष्टा है , साधक हैं , ऋषि हैं । वे मानव जाति के भविष्य के बारे में चिंतित थे , उसे संवारने के लिए वे धर्म को ही माध्यम मानते हैं । जोड़ने वाला धर्म जो मानव की पशु प्रवृत्तियों को रूपांतरित कर सके और जीवन तथा विश्व के पुनः निर्माण में सक्रिय भूमिका में उसे लगा सके । "[64]

इस प्रकार उनका कृतित्व हमारे प्राचीन- ऋषि-कवि की परंपरा में आता है । कालरिज ने कहीं लिखा है कि प्रत्येक महान कवि अनिवार्यतः एक महान चिंतक भी होता है ।[65] इस अर्थ में ओशो की गणना एक महान मनीषी साहित्यकार के रूप में होनी चाहिए । वस्तुतः उनका साहित्य तो बहुआयामी है और ज्ञान-विज्ञान की नयी क्षितिजों को उद्घाटित करता है । उनके यहां आपको राज-नीति , अर्थशास्त्र , मनोविज्ञान , ध्यान , योग , दर्शन , काम-शास्त्र , अध्यात्म प्रभृति अनेक विषयों को रस-प्लावित कर देने वाली जिज्ञासा मिलती है । अतः एक परंपरागत औसत साहित्य-कार से जो नहीं मिलता वह हमें ओशो के साहित्य में मिलता है । वस्तुतः उनका साहित्य हिन्दी की खेमापरस्त चौखटाबाज समीक्षा-पद्धति में कहीं फिट नहीं होता है , क्योंकि यह समीक्षा तो चीन की दीवार से भी ऊंची और बड़ी दीवारें बनाने में

व्यापृत है , जबकि ओशो रजनीश का समग्र कृतित्व सदैव दीवारों को ढहाने में कृत-संकल्प रहा है । वे हर किनारे से किनाराकशी करके निकल गये हैं । सुश्री उर्मिलजी ओशो-साहित्य की उत्कृष्टता के सन्दर्भ में कहती है —

"उनका कलापक्ष भी उतना ही उत्कृष्ट है जितना भावपक्ष । हिन्दी साहित्य को उन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से अनुपम रत्न भेंट किए । हिन्दी के सैंकड़ों सालों से प्रतिष्ठित भक्ति-काव्य को उन्होंने पुनर्स्थापित एवं पुनर्व्याख्यापित करके पाठकों के सामने प्रस्तुत किया । कबीर आदि संत कवियों की बानी के अंतरात्मा में बैठकर उनकी रहस्यानुभूति का बड़ी सहजता से साक्षात्कार कराया है । उनके रस में , उनके रहस्य में स्वयं निमज्जित होकर पाठकों को भी उस अलौकिक रस से सरोबार कर देते हैं : तेरे अंतर की सुर-बूँदें / मेरे अंतर में जाकर / मेरी किरणें और आलोकित हुईं / प्रभा तेरी पाकर । " हिन्दी के समस्त संत साहित्य को , उनकी वाणियों को , उनके धर्मोपदेशों को अपनी प्राणवान अनुभूतियों से अनुप्राणित करके हिन्दी पर बहुत कृपा की है उन्होंने । हिन्दी को उन्होंने बहुत समृद्ध किया है । हिन्दी साहित्य सदैव उनका ऋणी रहेगा ।" 66

ओशो-साहित्य पर विवाद :

हिन्दी के जो साहित्यकार ओशो-रजनीश के साहित्य से कतरा रहे हैं , उस संदर्भ में एक उल्लेखनीय बात यहाँ प्रस्तुत है । हिन्दी के एक साहित्यकार डा. नंदलाल ने " समय की धारा में हम प्रति-पल बह रहे हैं " शीर्षक से एक सुंदर लेख प्रकाशित करवाया था । उस संदर्भ में पाठकों की कई टिप्पणियां प्राप्त हुईं ~~जिनमें~~ जिनमें देवास(म.प्र.) के संदीप नायक ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा था कि डा. नंदलाल के दार्शनिकता से ओतप्रोत विचारों ने

बहुत अन्दर तक हिलाकर रख दिया । फिर समय को यों तो पैमानों पर रखकर हमने कई चीजें बचपन से सीखी हैं । पूरा आलेख पढ़कर लगा कि हम भौतिकता और स्वार्थ की दौड़ में अपनी ही चूलें उखाड़ रहे हैं ।" 67

परंतु डा. नंदलाल की मौलिकता की कलई खोलने वाली टिप्पणी आईपी विश्वप्रकाश दीक्षित "बटुक" {भुज-कच्छ} की है — " डा. नंदलाल का आलेख "समय की धारा में हम प्रतिपल बह रहे हैं " पढ़ा । बड़ा सुंदर , सात्त्विक और प्रेरक लेख है , परंतु यह बढ़िया माल चोरी का है । भगवान रजनीश के गीतादर्शन , अध्याय 8-10 के सजिल्द द्वितीय संशोधित संस्करण { 21 मार्च - 1980 : पृ. 674 } को पढ़िये और डा. नंदलाल का लेख पढ़िये । ज्यों का त्यों नकल मारकर रख दिया है । आश्चर्य तो यह है कि डाक्टर साहब ने डाक्टरेट पाने वाले विद्यार्थियों की इतनी शिष्टता भी नहीं बरती कि कहीं तो रजनीश का उल्लेख करते । क्या अशिष्टता के लिए डा. नंदलाल अपने पाठकों से क्षमा-याचना करेंगे ? स्वयं से तो वे क्षमा मांगेंगे नहीं क्योंकि यदि वे ऐसा करने का साहस जुटा पाते {जिस आत्म-साक्षात्कार के लिए रजनीश जोर देते हैं } तो चोरी का माल बाजार में लाने का दुःसाहस न करते । " 68

"ओशो टाइम्स" के संपादक स्वामी चैतन्य कीर्ति ने जून-1997 के संपादकीय में एक ऐसे किस्से का जिक्र किया है । अमरीका के एन. आर. आई. डा. दीपक चोपड़ा की एक पुस्तक — "पाथ टु लव" इधर बहुत चर्चित रही है । भारतीय प्रेस-मीडिया ने भी उन पर बहुत लिखा । स्वामी चैतन्य कीर्ति इस संदर्भ में लिखते हैं — "इसके बाद , मुझे उनकी पुस्तक " पाथ टु लव " का एक अध्याय , जो अमरीका की पत्रिका "प्ले बॉय " में " क्या परमात्मा को आरगाज्म होता है ? डज गोड हेव आर्गेज्म ? " के शीर्षक के साथ पहले ही प्रकाशित हो चुका था , किसीने मुझे पढ़ने को भेजा । यह

अध्याय पढ़कर तो मैं चकित हुआ कि निश्चित ही दीपक चोपड़ा ने ओशो की पुस्तक "विज्ञान भैरव तंत्र " पढ़ी है ; हिन्दी में यह पुस्तक "तंत्र-सूत्र" के नाम से पांच खण्डों में उपलब्ध है और जल्दी ही हिन्द पाकेट बुक्स के द्वारा दस खण्डों में उपलब्ध हो जायेगी । "69 खैर डा. दीपक चोपड़ा इतना तो स्वीकार करते हैं कि उन्होंने ओशो को पुस्तकें पढ़ी हैं, उनके प्रवचन सुने हैं और प्रेम के संबंध में उनकी दृष्टि के वे कायल हैं ।70

यहां यह तथ्य ध्यातव्य है कि ओशो रजनीश का कृतित्व जब तस्करी-कृत होकर अन्य लोगों के नाम से प्रकाशित होता है तो वह साहित्य की अद्भुत चीज़ और अमूल्य निधि हो जाती है, परंतु वही यदि उनके अपने नाम से जुड़कर आता है तो जड़ता-मूढ़ता-रूढ़िवादिता से ग्रस्त हमारे तथाकथित आधुनिक साहित्यकार भड़कते हैं । यह दंभ नहीं तो और क्या है ? साहित्य जगत में यह तो एक हमेशा का मानदंड {पैमाना} रहा है कि किसी भी कृति का मूल्यांकन प्रथमतः और मुख्यतः उस कृति के माध्यम से ही होना चाहिए, परंतु होता उसके विपरीत है । कृतिमूलक समीक्षा {कृतीक्षा} न होकर व्यक्ति-मूलक समीक्षा होने लगती है, जिसके अनेक खतरे हैं । संक्षेप में हम यही प्रतिपादित करना चाहते हैं कि ओशो रजनीश के कृतित्व को प्रतिष्ठित साहित्यकार यदि चुराते हैं, तो यही उनकी सफलता है और यही उनका साहित्यिक योगदान है ।

यहां एक और बात की ओर भी मैं ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा कि बिलकुल यही बात अहिन्दीभाषी हिन्दी साहित्यकारों के साथ भी होती है । हिन्दी-क्षेत्र के लोग हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना तो चाहते हैं, पर अपनी साम्राज्यवादी नीति के कारण सदैव xxxxx अहिन्दी-क्षेत्र के हिन्दी साहित्य को दोयम दर्जा देते हैं । यह स्थिति बड़ी चिन्ताजनक है । परन्तु बात हम ओशो की कर रहे थे । जैसे कई बार चोरों के कारण व्यक्ति की इज्जत

बढ़ती है कि आखिर कुछ तो है उसके घर में जो चोर आकृष्ट हुए :.
ठीक उसी प्रकार ओशो साहित्य की चोरी से इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि ओशो के यहां कुछ चुराने लायक भी है । यही शायद ओशो-साहित्य की सबसे बढ़िया समीक्षा है ।

यहां एक और बात भी उल्लेखनीय रहेगी कि हरीन्द्र दवे , नीरजजी , अमृता प्रीतम प्रभृति प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने ओशो रजनीश के अनेक पुस्तकों की भूमिका लिखी है , जिसके कारण अब उन्हें मरणोत्तर सम्मान चारों तरफ़ से मिल रहा है । पर एक समय था कि लोग उनके नाम मात्र से बिदकते थे । यहां तक कि इतने अनेक-आयामी चिंतन-मनीषी को मात्र "सेक्स-गुरु" जैसी संज्ञा से लेबलाइज्ड किया जा रहा था । इस संदर्भ में अमृता प्रीतम का वक्तव्य उल्लेखनीय समझा जायेगा --

" मैडम । [इन्दिराजी] जातिवाद और मज़हबवाद जैसी नेगेटिव ताकतों के हाथों जहां हमारे देश के लोग टूट रहे हैं । हमारे देश की एकता टूट रही है । उन कितनी ही मसाइलों पर आवाज़ उठाने वाले हमारे देश के एक दार्शनिक आचार्य रजनीश को कई तरह से परेशान किया जा रहा है , खासकर वेस्टर्न लोबी से । उनकी हिफ़ाजत के लिए हमारे कितने ही शायरों , अदीबों और पत्रकारों ने पार्लियामेण्ट के हर सदस्य के नाम एक चिट्ठी जारी की है । मैं उसी बुनियाद पर कहना चाहती हूं कि इस पर तवज्जो दी जाए । जिस दार्शनिक की आवाज़ दुनिया की 28 भाषाओं में तर्जुमा की जाती है , उस आवाज़ को खामोश कर देने की साजिश उनके अपने ही देश में हो , मैं समझती हूं यह चिंतन की तौहीन है । स्याह ताकतों का पूरा यत्न इनसान को भयग्रस्त करने के लिए ~~और×रजनीश×का×पूरा×चिंतन×××~~ ~~है×और×इनसान×को×भयमुक्त×कर~~ है और रजनीश का पूरा चिंतन इनसान को भयमुक्त करने के लिए है । मैं चाहती हूं , राष्ट्र की ओर से कि ऐसी चिंतनशील

और तर्कशील आवाज़ को बचा लिया जाय ।" 71 - §5-9-1988§

हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में ओशो रजनीश के साहित्य की जो उपेक्षा हुई है, उस संदर्भ में चिन्ता व्यक्त करते हुए अमरावती विश्वविद्यालय §महाराष्ट्र§ के डा. किशोर सूर्यवंशी कहते हैं कि यह कितने ताज्जुब और साथ ही आघातजनक बात है कि देश के अनेक दिग्गज विद्वान रजनीश साहित्य की केवल एक पुस्तक के शीर्षक मात्र से भयभीत हो गये और उसे उपेक्षित कर दिया, केवल नाम सुनकर, पढ़कर नहीं । 72

इस संदर्भ में अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं — "साहित्य का उद्देश्य मनुष्य के आंतरिक सौन्दर्य को प्रत्यक्ष करना है, इस सौन्दर्य भावना के दो रूप होते हैं — भौतिक सौन्दर्य और मानसिक सौन्दर्य । कवि या साहित्यकार अपनी कला के स्पर्श से जगत की कुरूप वस्तुओं को सुन्दर रूप देना चाहते हैं । यही कार्य रहस्यदर्शी ऋषि, कवि, साहित्यकार, दार्शनिक और महान तत्ववेत्ता § तमाम विशेषताओं से परे § श्री रजनीश कर रहे हैं । जीवन के विभिन्न आयाम, विभिन्न दृष्टियां, जीवन जीने के तरीके, सभ्यता और संस्कृति के सन्दर्भ में ओजस्वी एवं हृदयग्राही आख्यान सामाजिक समझ, जीवन के घटते-बढ़ते मूल्यों की प्रभावशाली व्याख्याएं, उनके कारण और परिणाम और समाधान आदि से हिन्दी साहित्य की निधि रिक्त नहीं है । किन्तु अध्ययन से विदित होता है कि हिन्दी के साहित्यिक ग्रंथों के पृष्ठों पर उसके उद्गम से आज तक एक प्रकार के ही साहित्यकारों के नामों के दर्शन होते हैं । और उन्हीं नामों की पुनरावृत्ति की श्रृंखलाओं में आज का हिन्दी साहित्य जकड़ा हुआ है । आश्चर्य होता है कि इनके परे भी एक नाम, एक व्यक्तित्व या शख्सियत है, जिसे "रजनीश" कहते हैं । बस यही एक नाम या "अस्तित्व"

हिन्दी साहित्य से उपेक्षित क्यों ? आखिर क्यों ? क्या कमी है, क्या अभाव है, उस व्यक्ति के शब्द में, शब्दों के बोलों में, बोलों की वाणी में, वाणी के अर्थों में, अर्थों की व्याख्या में और व्याख्या की गहराई में ? केवल इसलिए कि हमारी या आपकी किसी दुखती रग पर ऊंगली रक्खी गई है। आप भीतर-ही-भीतर कहीं दुःख गये, आपके भीतर का पूर्वाग्रहों से ग्रस्त एक "फोड़ा" दुःख गया और "मवाद" स्वरूप आपकी प्रतिक्रियाएं विपरीत पक्ष में जगजाहिर होने लगी। यह तो कोई बात नहीं। आदरणीय विद्वज्जनो सच तो यह है कि गर्क होने का हममें साहस ही नहीं है। " जो डूबना हो तो इतने शकून से डूबो / कि आसपास की लहरों को पता न लगे।" • 73

यहां हम इतना जोड़ना चाहेंगे कि कबीर जैसे दार्शनिक कवियों को भी उनके समकालीनों ने नकारा था। क्योंकि कबीर भी लोगों की दुखती रग पर ऊंगली रखने का साहस रखते थे। परंतु आज वही कबीर हिन्दी साहित्य भंडार के एक अमूल्य रत्न माने जाते हैं। हमारा विश्वास है कि समकालीनों द्वारा नकारे जाने पर भी भविष्य इस रहस्यदर्शी तत्ववेत्ता की काव्य-वाणी को स्वीकार करेगा और उसके संकेत अब मिलने लगे हैं।

डा. किशोर सूर्यवंशी इसी सन्दर्भ में आगे लिखते हैं कि " श्री रजनीश के व्यक्तित्व के बारे में तो बहुबहx बहुत कुछ अनर्गल प्रलाप समय-असमय किये जाते हैं, किन्तु कभी उनके कृतित्व पर भी हिन्दी साहित्यकार अपनी लेखनी उठाने का कष्ट करते हैं ? "रजनीश-साहित्य" की आलोचनाओं, समीक्षाओं द्वारा उनके एवं अपने बीच खुली चर्चा का मंच तैयार करते तो शायद हिन्दी का अनमोल साहित्य आज की स्थितियों में कुछ और मोड़ लेता और उसकी उपलब्धियों में चार चांद लग जाते और ऐसा साहित्य ग्रंथालयों की धूल में सड़ने को

विवश न होता । वह एक आम आदमी का साहित्य होता , जो आज केवल बुद्धिवादियों की बपौती बन बैठा है । आज के मूल्यहीन सन्दर्भों में इसे रजनीश-साहित्य का सौभाग्य कहें या हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य ? यह प्रश्न आज हिन्दी साहित्य में शोध के लिए मजेदार विषय हो सकता है । हिन्दी में श्री रजनीश के विषय में जितना भी किसी भी माध्यम से यदि कहीं-कुछ पढ़ने-सुनने को मिला , वह उनकी व्यक्तिगत आलोचना ही अधिक रही , उनके साहित्य के सन्दर्भ में समीक्षात्मक उल्लेख उतना नहीं मिलता । हिन्दी काव्य के आधार-स्तम्भ कबीर , मीरा , दयाबाई, नानक , रैदास , सुंदरदास आदि कवियों के जीवन-दर्शन पर हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि बहुत पैने रूप से गहरी और गहरी गई किन्तु तल से मोती लाने का श्रेय तो रजनीश को ही जाता है । ... श्री रजनीश एक मस्त-मलंग कबीर की तरह अपने आप से बेपरवाह चौपाल की मजलिस में अपना सूफियाना अन्दाज़ लिए समन्वित किन्तु सबसे भिन्न एवं अनूठे विराट बुद्ध पुरुष के रूप में प्रकट होते हैं : शब्दों में कबीराना फक्कड़पन , किन्तु अर्थों का सम्राट , वाणी में मिठास मीरा की और समर्पण की गहराई भी मीरा-सी , आँखों में उपरव्यापी मस्ती , बुद्ध की शांति , कृष्ण-सी विराटता की विशालता का पुनित सागर लिए हुए । " 74

वस्तुतः बुद्ध , महावीर , जिसस , कृष्ण और गांधी का एक संतुलित समन्वित रूप हमें इस विलक्षण पुरुष में प्राप्त होता है । बुद्ध और कबीर के बाद , उनकी क्रान्तिकारी परंपरा को और आगे बढ़ाने-वाली विलक्षणता हमें उनके साहित्य में उपलब्ध होती है ।

ओशो-रजनीश का व्यक्तित्व एवं चिंतन विराट और असीम की उन सीमाओं को छूता है , जहां देशकाल के भेद मिट जाते हैं । विश्व के दार्शनिक कवियों , संतों , सूफियों में हमें उनकी वाणी की

गुंज-अनुगुंज सुनाई पड़ती है । हाफिज शीराजी ऐसे ही एक सूफी शायर हैं, जिनके संबंध में अमृता प्रीतम ने लिखा है — " अजितसिंह हैरत फारसी के एक आलिम है, एक दिन हाफिज शीराजी का दीवान उन्हीं के हाथों में था, और जब हाफिज शीराजी का कलाम उनकी आवाज़ में उतरता रहा, मुझे लगा ओशो कहीं पास खड़े हैं । वह कभी झेन संन्यासी की ओर संकेत करते हैं, कभी हाफिज शीराजी की ओर, मेरी आंखों में एक चेहरा पिघल जाता है, कभी दूसरा ... कह सकती हूं कि मुझे बरसों का एक अनुभव है — मैं जब भी नानक को समझना चाहती हूं तो देखती हूं कि ओशो, वहां खड़े हैं । मुझे संकेत से वहां ले जाते हैं, जहां नानक के दिदार की झलक मिलती है ... मैं कृष्ण को समझना चाहती हूं तो पाती हूं कि सामने ओशो खड़े हैं और फिर वे मुस्कुराते-से कृष्ण की ओट हो जाते हैं ... जानती थी कि वे बुद्ध के मौन में छिपे हैं, मीरा की पायल में भी बोलते हैं, लेकिन जब आज हाफिज शीराजी ने साकी से शराब मांगी तो एक नया-सा अनुभव हुआ, ओशो मेरी तलब के होठों पर कतरा-कतरा बरस रहे हैं । " 75

वस्तुतः आज संसार जिस रफ्तार से हिंसा, अपराध, और वैमनस्य के दौर से गुज़र रहा है, उसमें सच्ची रचनात्मकता ही उसे बचा सकती है । केवल अमरिका में ही अपराध कितना फल-फूल रहा है, उसका अन्दाज़ स्वामी सत्यवेदांतजी द्वारा प्रदत्त निम्न-लिखित आंकड़ों से आ सकता है — " द एन्युअल ~~स्टेअस~~ स्टेटिक्स इन यु.एस. वायोलेण्ट क्राईम कन्टीन्यु टु सोर. इन 1992 देर वाज़ वन वायोलेण्ट क्राईम एवरी 22 सैकण्ड, वन मर्डर एवरी 22 मिनट्स, वन रेप एवरी फाइव मिनट्स एण्ड वन रोबरी एवरी 47 सैकण्ड्स. द एन्युअल एस्टिमेटेड टोटल नंबर आफ वायोलेण्ट क्राईम्स इन 1992 वाज़ 23 % मोर देन 1988

एण्ड 54 ✗ मोर थैन 1983 . धस वायोलन्स इज़ आउट आफ कन्ट्रोल . " 76

इस अमरीकन अपराध-वृत्ति से दुःखी होते हुए प्रसिडेण्ट क्लिन्टन ने पुलिस अफसरों के सामने कहा था -- हाउ लोंग आर वी गोइंग टु लैट धीस गुन ? " इसका उत्तर ओशो द्वारा प्रबोधित रचनात्मकता में है , जो मैडिटेशन से आती है । ओशो कहते हैं — "क्रिएटीविटी इज़ रीलिजियन , क्रिएटीवीटी इज़ प्रेयर. क्रिएटिविटी केन कम ओन्ली आउट आफ मैडिटेटिवनेस. " 77 "क्रिएटिविटी इज़ रीलिजियन " ओशो के इस मर्म-वाक्य के संदर्भ में मेरी स्मृति में मेरे निर्देशक महोदय का एक दोहा कौंध जाता है —

"तप तीरथ पूजा स्मरण , लोग ढूंढे तुमको ।
कविताई में कानजी तुम मिल गये हमको ।। "78

ध्यान और रचनात्मकता अपनी चरम सीमा में अभेदत्व स्थापित कर देते हैं , इस सत्य की स्वीकृति प्रसिद्ध संतूरवादक शिवकुमारजी ने भी की है कि अपनी संगीत साधना में जब वे पूर्णतया खो जाते हैं ४यही ध्यान की अवस्था है ४ तब वे एक नये विश्व में पहुंच जाते हैं । यह एक अलग ही विश्व है और जो लोग यहां जी रहे हैं , वे जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं । " 79

इससे यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि ओशो रजनीश मनुष्य की अन्तः चेतना के कायल हैं , जिसका रूपांतरण कलात्मक रचनात्मकता में होता है और जिसकी उपादेयता प्रत्येक लेखक-कवि-चिंतक को ज्ञात है । इस प्रकार ओशो ने न केवल साहित्यिक योगदान दिया है , बल्कि साहित्यिक योगदान के मूलभूत हेतु को भी रेखांकित किया है ।

डा. सरोजकुमार वर्मा ओशो को एक समग्रतावादी दार्शनिक बताते हुए लिखते हैं — " लीके लीके सब चले लीके चले कपूत / लिकन से

हटकर चले , शायर शेर सपूत । " कबीर की यह साखी प्रतिभा को पहचानने का एक अद्भुत पैमाना है । समय की कसौटी पर ओशो जब इस पैमाने से गुजरते हैं , तो खुद समय कहता है कि ओशो वह शख्स है , जिन्होंने जीवन के तमाम विषयों को अपनी मौलिकता में ऐसी गहराई से छुआ कि अपनी वैचारिक मौलिकता , सूक्ष्मता और तार्किकता के कारण वर्तमान सदी के सर्वाधिक चर्चित परन्तु विवादास्पद दार्शनिक गुरु बन गये ।" 80

यहां ओशो की मौलिकता के सन्दर्भ में उनकी एक अवधारणा स्मृति में कौंध रही है । हिन्दी के प्रायः विद्वानों ने तुलसी के उस दोहे की भूरि-भूरि प्रशंसा की है , जिसमें वे वृन्दावन में कृष्ण की मूर्ति को देखकर कहते हैं कि "तुलसी मस्तक तब नमै , धनुषबाण गहो हाथ" । परन्तु इस संदर्भ में तुलसी की भर्त्सना करते हुए ओशो कहते हैं कि भक्त कभी भगवान के आगे शर्त नहीं रखता है । भक्त और भगवान का रिश्ता तो प्रेम का रिश्ता है और प्रेम में शर्त भी नहीं होती और अभिमान भी नहीं होता । पूर्वाग्रहों के वस्त्रों को छोड़कर ही भगवान से मिला जा सकता है । आप सहज होकर ही प्रेम कर सकते हैं , सहज होकर ही भक्ति भी कर सकते हैं और जहां अभिमान होगा , जहां अकड़ होगी , वहां तो प्रेम एक सैकण्ड भी नहीं टिक सकता ।

डा. उर्मिला सिंह ओशो और उनके [illegible] वाड.मय पर [illegible] बोलते हुए कहती हैं — "इसीलिए हिन्दी के और भारत के विद्वान ओशो के बारे में बिलकुल मौन हैं । वे उनकी समझ के बाहर हैं और कबीर जैसे संतों पर थीसिस — शोध-प्रबंध लिखकर डाक्टरेट की उपाधियां प्राप्त की जाती हैं और ये विद्वान अपनी बुद्धि द्वारा इन संतों की बुद्धि के पार की आध्यात्मिक स्थिति की व्याख्या करने के अधिकारी बन जाते हैं किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि ये लोग इन संतों के अंतर-

रहस्यों पर प्रकाश डालनेवाली ओशो जैसे परम संत की वाणी के महत्व को स्वीकार नहीं करते । •81

ओशो के हिन्दी साहित्य के योगदान पर वह लिखती हैं — "हिन्दी जगत को इस बात पर गर्व होना चाहिए कि ओशो की वाणी हिन्दी भाषा के माध्यम से विश्व के सामने मुखरित हुई । बोलते तो वे हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में हैं , किन्तु आरंभ के कई वर्षों तक वे निरंतर हिन्दी में ही बोलते रहे , जिसके परिणाम-स्वरूप इसकी अभिव्यंजना शक्ति समृद्ध एवं परिपुष्ट हुई । और इसके रूप एवं सौन्दर्य में निखार आया । ओशो की भाषा की विशेषता है उसका स्वाभाविक प्रवाह । गंभीर से गंभीर विषयों पर बोलते समय उनकी वाणी से शब्द सरिता की भांति प्रवाहित होते हैं । उपयुक्त शब्दों के चुनाव के लिए उन्हें कभी अटकना नहीं पड़ता । शब्द चाहे तत्सम हो , तद्भव हो या देशज , वे सदैव चालु एवं प्रचलित शब्द का प्रयोग करते हैं । विषय के संदर्भ में उनके द्वारा प्रयोग किए शब्द ऐसे जंचते हैं , जैसे अलंकार में जड़े नगीने । उनमें से किसी एक शब्द को भी बदलने की कोशिश की जाए तो सारा अर्थ-सौष्ठव नष्ट हो जाता है । ओशो की हिन्दी अत्यन्त जीवन्त एवं सजीव है । विषयानुसार उसमें प्रसाद एवं ओज एवं माधुर्य गुण परिलक्षित होते हैं । किन्तु प्राधान्य प्रसाद गुण का ~~होरहै~~ ही है । वाक्य छोटे-छोटे होते हैं और शब्दावली अत्यन्त सरल , इसीलिए बिना किसी कठिनाई के आशय समझ में आ जाता है । क्लिष्टता एवं अस्पष्टता का नितान्त अभाव है । जिन गहन गंभीर आध्यात्मिक विषयों को शुष्क , नीरस एवं क्लिष्ट माना जाता था , उनकी चर्चा ओशो सरल एवं बड़े रोचक ढंग से करते हैं । • 82

उक्त समग्र विवेचन , विश्लेषण एवं विवरण को संक्षेप में बताते हुए

हम कह सकते हैं कि ओशो रजनीश का हिन्दी साहित्य में योगदान नगण्य नहीं है , प्रत्युत अत्यन्त महत्वपूर्ण अतुलनीय एवं विरल है । वस्तुतः जो साहित्य की व्यापक परिभाषा में [illegible] समाविष्ट होता है , उसे साहित्य की संज्ञा दी जानी चाहिए और उसके रचयिता को साहित्यकार का गौरव प्रदान करना चाहिए । परंतु बरअक्स इसके हमारे यहां हुआ उसका विलोम है । हम लोगों ने स्थापित साहित्यकारों या रूढ़ अर्थ में कहें तो केवल साहित्यिक क्षेत्र के लोगों की रचनाओं को ही साहित्य समझने की गलतफहमी को पाला है । परिणाम यह हुआ है कि पुराने साहित्यकारों के दोहराव को भी हम सहते और सराहते गये हैं । और उतने ही बड़े परिमाण में नवोदितों का नुकसान हुआ है , उपेक्षा हुई है । खैर ओशो-रजनीश के साथ यह बात नहीं है , क्योंकि इन्होंने अपनी साहित्यिक स्वीकृति के लिए कभी परवाह ही नहीं की , क्योंकि कभी हीरे को गरज नहीं होती कि लोग उसको पहचाने-- और मूल्यांकित करें । ओशो-रजनीश के साहित्य को हिन्दी साहित्य की परिसीमाओं में लाने से लाभ ओशो का नहीं , हिन्दी साहित्य का है । वैसे यह भी एक विडम्बना है कि जो लोग ओशो के जीवन-काल में ओशो से भागते थे , ओशो-साहित्य को गर्हित समझते थे , अपनी विकृत समझ के कारण उस पर अनेक विकृतियों को आरोपित करते थे , वे ही लोग अब ममxx सन् 1990 के बाद उनके साहित्य की सराहना करते थकते नहीं हैं और हमारा विश्वास है कि जैसे-जैसे समय व्यतीत होगा ओशो साहित्य के जिज्ञासु-भावकों की संख्या में अभिवृद्धि होती जायेगी । इस संदर्भ में खुशवन्तसिंह का यह कथन उल्लेखनीय समझा जायेगा कि ओशो का सही-सही मूल्यांकन हजार वर्ष बाद ही संभव है । ओशो परंपरागत बेड़ियों में जकड़े हुए आदमी के मन को आजाद करते हैं और अब उनके उदय के साथ हमें एक नवीन धर्म उपलब्ध हुआ है ,

जो निरर्थक साज-सामान से मुक्त है ।"[83] ओशो-विषयक यह कथन उन्होंने ओशो के निधन पर श्रद्धांजलि देते हुए कहा था ।

ओशो के महत्व को रेखांकित करते हुए खुशवन्तसिंह आगे कहते हैं -- " सबसे कीमती बात मुझे लगी कि वे हर श्लोक को उपनिषद, सूफी कहानियां , और न जाने कितने किस्म की पृष्ठभूमि देकर प्रस्तुत करते हैं । मैंने तो सिर्फ शब्दशः अनुवाद किया था । ओशो ने जपुजी को इतना नया सन्दर्भ दे दिया कि उसे एक नया अर्थ प्राप्त हुआ है , और मेरा अपने ही गुरु के प्रति आदर कई गुना बढ़ गया । अब तक मैं , नानक को अर्द्धशिक्षित-संत (सेमी लिटरेट प्रोफेट) कहता था , लेकिन ओशो की व्याख्या सुनने के बाद मुझे यह महसूस हुआ गुरु नानक तो प्रतिभाशाली कवि-चिंतक थे और उनके शब्दों में गहरे विचार छिपे हुए थे । " [84]

अतः समग्र अध्याय के समाकलन के उपरांत हम निम्नलिखित निष्कर्षों को रेखांकित कर सकते हैं --

(1) शबरपा , सहरपा , गोरख , कबीर , मीरा , नानक की परंपरा में ओशो-रजनीश भी आ सकते हैं ।

(2) साहित्य की व्यापकतम परिभाषा में तो ओशो का साहित्य आ ही जाता है , परंतु डीक्वेन्सी जिसे "लिटरेचर आफ पावर " कहता है , (हमारे यहां का काव्य) उसमें भी ओशो का साहित्य समाविष्ट हो जाता है । साहित्य की जितनी भी प्राचीन-अर्वाचीन अवधारणाएं हैं , उन अवधारणाओं पर ओशो का साहित्य खरा उतरता है । संश्लिष्टता - अर्थात् लिखा हुआ साहित्य ही साहित्य की परिधि में आता है , यह अवधारणा भी अब खारिज हो चुकी है । वस्तुतः शास्त्र और साहित्य में अंतर है , परंतु ओशो की विशेषता यह है कि वे शास्त्र की चर्चा भी इस प्रकार करते हैं कि वह शास्त्र रहते हुए साहित्य की वस्तु बन जाता है । किसी वैज्ञानिक

विषय पर बात करते समय भी ओशो उसकी प्रस्तुति इस ढंग से करते हैं कि वह साहित्य का-सा आनंद देने लगती है ।

§3§ वस्तुतः ओशो वाङ्मय में अन्य शास्त्र तथा विषय योनियों के रूप में आते हैं , आत्मा स्थान पर तो साहित्य ही विराजमान रहता है ।

§4§ ओशो-साहित्य पर एक विहंगम दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि उनके द्वारा प्रबोधित साहित्य-रूप न केवल साहित्य में अन्तर्निहित हो सकते हैं , प्रत्युत उससे हिन्दी साहित्य की श्री-समृद्धि तथा सौन्दर्य-बोध में एक नया परिमाण जुड़ता है ।

§5§ ओशो ने सायास साहित्य का सृजन नहीं किया , उन्होंने जो कुछ भी किया , वह अनायास किया और यह अनायास किया है , अतः उसे साहित्य नहीं कह सकते , उसे तो समझ का दिवालियापन ही कहा जा सकता है । साहित्यकार लिखे वह साहित्य नहीं , जो साहित्य का सृजन करता है , वह साहित्यकार होता है , और इस पैमाने से ओशो की गणना हिन्दी के साहित्यकारों में हो सकती है ।

§6§ ओशो ने जापानी काव्य-प्रकार हाईकु की बड़ी सुंदर व्याख्याएं की हैं ।

§7§ संत-साहित्य पर ओशो के जो प्रवचन हैं , उनसे ओशो का सर्वाधिक-रूप प्रस्थापित होता है । ओशो की व्याख्याएं शुष्क व नीरस नहीं होती । उनमें भी भरपूर रस होता है ।

§8§ हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के कई साहित्यकारों ने ओशो के लेखन को साहित्य के अन्तर्गत स्थान देने की सहमति प्रदान की है ।

===== XXXXX =======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ द्रष्टव्य : समीक्षायण : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 6 ।

§2§ वही : पृ. 11 ।

§3§ वही : पृ. 11-12 ।

§4§ पश्चिमनुं साहित्य विवेचन §गुजराती§ : डा. शिरीष पंचाल
पृ. 231 ।

§5§ ओशो टाइम्स : इण्टरनेशनल : सप्टेम्बर-1 : 1993 : वॉल्यूम-6 :
स्वामी चैतन्य कीर्ति : पृ. 17 ।

§6§ इबिड : पृ. 17 ।

§7§ इबिड : पृ. 17 ।

§8§ ओशो टाइम्स : द रेजर्स एड्ज : सप्टेम्बर-1993 : पृ. 11 ।

§9§ निबंध और निबंध : डा. विश्वनाथप्रसाद : पृ. 78 ।

§10§ द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डा. पारूकांत देसाई
: पृ. 153 ।

§11§ पाश्चात्य साहित्य चिंतन : डा. निर्मला जैन : पृ. 119 ।

§12§ साहित्यकार का सामाजिक दायित्व : निबंध और निबंध :
डा. विश्वनाथप्रसाद : पृ. 79 ।

§13§ चिन्तामणि : भाग-1 : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : साधारणीकरण
और व्यक्तिवैचित्र्यवाद नामक निबंध ।

§14§ निबंध और निबंध : पृ. 81 ।

§15§ हिन्दी साहित्यकोश : भाग-1 : पृ. 921 ।

§16§ साहित्य का श्रेय और प्रेय : जैनेन्द्रकुमार : पृ. 23-27 ।

§17§ नवभारत टाइम्स : दैनिक : 13-1-94 : पृ. 4 ।

§18§ सूखे सेमल के वृन्तों पर : भूमिका से ।

§19§ मानसमाला : पृ. 40 ।

§20§ समीक्षायण : पृ. 16 ।

§21§ डा. देसाई के एक व्याख्यान से ।

§22§ जयशंकर प्रसाद : काव्य , कला और अन्य निबंध ।
§23§ तंत्रसूत्र- भाग-1 : ओशो परिचय : पृ. 2 ।
§24§ ओशो टाइम्स : संपादकीय : सेक्स , प्रेम , विवाह और परिवार : पृ. 7 ।
§25§ द्रष्टव्य : ओशो : सुरेश दलाल : पृ. 5, 10, 10, 14 ।
§26§ वही : पृ. 10 : गुजराती से हिन्दी में अनुवाद ।
§27§ ओशो टाइम्स : जून-1997 : पृ. 5 ।
§28§ वही : पृ. 6 ।
§29§ द्रष्टव्य : ओशो : सुरेश दलाल : पृ. 43 ।
§30§ ओशो टाइम्स - जून-97 : पृ. 14 ।
§31§ ओशो टाइम्स : जनवरी-1997 : पृ. 5 ।
§32§ वही : पृ. 8 ।
§33§ वही : पृ. 38 ।
§34§ ओशो टाइम्स : अप्रैल-97 : ओशो - साहिब मिल साहिब भये : पृ. 39 ।
§35§ वही : पृ. 22-23 ।
§36§ ओशो टाइम्स : जनवरी-97 : पृ. 40 ।
§37§ वही : पृ. 44 ।
§38§ वही : पृ. 40-41 ।
§39§ चल हंसा उस देश : ओशो : पृ. 33-34 ।
§40§ सुनो भाई साधो : ओशो : पृ. 138-144 ।
§41§ रजनीश टाइम्स : इण्टर नेशनल : जन्मदिवस विशेषांक : अंक-23-24 : दिसम्बर-1988 : पृ. 8 ।
§42§ वही : पृ. 14 ।
§43§ उनकी व्यक्तिगत डायरी से ।
§44§ नं-41 के अनुसार : पृ. 58 ।
§45§ वही : पृ. 23 ।
§46§ डा. चारूकांत देसाई : सूखे सेमल के वृन्तों पर ।

(47) ओशो टाइम्स : वार्षिक अंक -1992 : पृ. 25 ।

(48) वही : पृ. 24 ।

(49) हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 19-20 ।

(50) ओशो टाइम्स : वार्षिक अंक : 1992 : पृ. 25 ।

(51) वही : पृ. 25 ।

(52) वही : पृ. 26 ।

(53) वही : पृ. 26 ।

(54) वही : पृ. 27 ।

(55) रमानाथ अवस्थी : वही : पृ. 26 ।

(56) वही : पृ. 27 ।

(57) वही : पृ. 28 ।

(58) वही : पृ. 28 ।

(59) द्रष्टव्य : वही : पृ. 26 ।

(60) वही : पृ. 28 ।

(61) वही : पृ. 28 ।

(62) वही : पृ. 29 ।

(63) वही : पृ. 27 ।

(64) वही : पृ. 27 ।

(65) " एवरी ग्रेट पोएट इज एट द सेइम टाइम ए प्रोफाउण्ड फिलोसोफर आल्सो. — कालरिज ।

(66) ओशो टाइम्स : वार्षिक अंक—1992 : पृ. 29 ।

(67) धर्मयुग : अप्रैल- 16—30 : 1994 : पृ. 5 ।

(68) वही : पृ. 5 ।

(69) ओशो टाइम्स : जून-97 : पृ. 7 ।

(70) वही : पृ. 7 ।

(71) वही×ẋ×× रजनीश टाइम्स : इण्टरनेशनल : वर्ष-1 : अंक-18 : 25 सितम्बर से 10 अक्तूबर : 1988 : पृ. 9 ।

(72) रजनीश टाइम्स : वर्ष-1 : अंक-17 : महापरिनिर्वाण-दिन विशेषांक : 11 से 25 सितम्बर : 1988 : पृ. 7 ।

(73) वही : पृ. 7 ।

(74) वही : पृ. 7 ।

(75) ओशो टाइम्स : 1-15 जुलाई : 1994 : लेख— झीनी चदरिया: अमृता प्रीतम : पृ. 22 ।

(76) ओशो-टाइम्स (अंग्रेजी) : जुलाई - 1994 : पृ. 3 ।

(77) वही : पृ. 3 ।

(78) मानसमाला : डा. पारूकांत देसाई : भाग-2 (पाण्डुलिपि से)

(79) रजनीश टाइम्स : 11-24 अप्रैल : 1988 : पृ. 4 ।

(80) ओशो टाइम्स : वार्षिक अंक : 1993 : पृ. 80 ।

(81) वही : पृ. 87 ।

(82) वही : पृ. 85-86 ।

(83) ओशो टाइम्स : 1-15 जून : 1994 : पृ. 22 ।

(84) वही : पृ. 22 ।

======== XXXXXX ======